(93

भारत का विधि आयोग

राष्ट्र-पार मुकदमे, विधि संघर्ष, परिसीमा विधि

विषय पर

एक सौ तिरानवेवीं रिपोर्ट

जून, 2005

न्यायमूर्ति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष,

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली- 110001
फैक्स : (011) 23073864,
23388870
E-Mail:chic@nic.in

निवासः
1, जनपथ
नई दिल्ली- 110011
दूरभाषः 23019465

7 जून, 2005

अर्ध0शा0सं0 6(3)107/2005-एल0सी0(एल एस)

प्रिय श्री भारद्वाज जी,

मुझे "राष्ट्र-पार मुकदमे, विधि संघर्ष, परिसीमा विधि" विषय पर विधि आयोग की 193वीं रिपोर्ट अग्रेषित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है ।

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार और हमारे देश की आर्थिक नीति के उदारीकरण के संदर्भ में, सभी 'कॉमन लॉ' वाले देशों में परिसीमा विधि में हुए मूलभूत परिवर्तनों पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है । 'कॉमन लॉ' वाले देशों में परिसीमा विधियों को परम्परागत रूप से, अन्तरराष्ट्रीय मुकदमों के संदर्भ में भी, प्रक्रियात्मक समझा जाता है जबकि सिविल विधिक प्रणालियों में परिसीमा विधियों को मूल विधि समझा जाता है । परिसीमा विधि को प्रक्रियात्मक मानने वाले देशों में परिसीमा अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् विधिक उपचार वर्जित हो जाता है जबकि अधिकार सैद्धान्तिक रूप से बना रहता है । परन्तु जिन देशों में परिसीमा विधि को मूल विधि समझा जाता है वहां न्यायिक उपचार निर्वापित हो जाने के साथ-साथ अधिकार भी निर्वापित हो जाता है ।

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में, जहां विदेश में कोई संविदा की जाती है या वहां किसी अन्य प्रकार के विधिक दायित्व उत्पन्न होते हैं और किसी अन्य देश में न्यायिक उपचार का आश्रय लिया जाता है वहां इस प्रकार का अन्तर महत्वपूर्ण हो जाता है कि परिसीमा विधि 'प्रक्रियात्मक' है या 'मूल' । उदाहरण के लिए, किसी देश में अपने अधिकार को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए

लागू होने वाला परिसीमा अवधि मूल विधह है और विदेशी पक्षकार भारत में अनुयोग संस्थित करता है तो भारत में प्रक्रिया के लिए विचारण करने वाले देश की विधि लागू होगी जबकि उस अधिकार के संबंध में उस विदेश की मूल विधि लागू होगी । क्योंकि भारतीय विधि में परिसीमा विधि को प्रक्रियात्मक समझा जाता है, यदि विदेश में न्यायिक उपचार वर्जित हो गया है और यदि भारत में परिसीमा अवधि विदेश की तुलना में लम्बा हो तो विदेशी पक्षकार भारत में अनुयोग संस्थित कर सकता है । धारा 11 में अन्तर्विष्ट इसका एकमात्र अपवाद, जहां भारतीय न्यायालय अनुतोष से इंकार कर सकते हैं वह है जहां विदेशी विधि के अनुसार संविदा निर्वापित हो गई है और पक्षकार ऐसे नियम द्वारा विहित अवधि के दौरान विदेश के अधिवासी थे ।

यदि परिसीमा विधि भारत की तरह प्रक्रियात्मक रहती है तो उससे 'फोरम शॉपिंग' को प्रोत्साहन मिलेगा । विगत पचास वर्षों में, प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ विषय पर शैशायर एण्ड नार्थ सहित लगभग सभी प्रमुख लेखकों द्वारा विदेशी परिसीमा विधि को यदि मूल विधि माना जाए तो उससे होने वाले लाभों का उल्लेख किया है क्योंकि ऐसा हो जाने पर यदि अनुयोग किसी अन्य देश में भी फाइल किया जाता है तब भी विदेशी परिसीमा अवधि ही लागू होगी । 'फोरम शॉपिंग' की संभावना नहीं रहेगी । वास्तव में, ब्रिटेन तथा अन्य कोंमन लॉ वाले देशों में, विदेशी परिसीमा विधि को फॉरेन लिमिटेशन पीरियडस् एक्ट, 1984 के अधीन मूल विधि स्वीकार करते हुए, विधि में परिवर्तन किए गए हैं । आस्ट्रेलिया दि चॉइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1993 (एन एस डब्ल्यू), दि चॉइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1996 (क्वीन्सलैण्ड) आदि विद्यमान हैं । आस्ट्रेलिया की उपर्युक्त विधियों में मैकेन बनाम आर.डब्ल्यू मिलर एण्ड कम्पनी (साऊथ आस्ट्रेलिया) प्राइवेट लिमिटेड : (1992) 174 सी एल आर, पृष्ठ 1, मामले मुख्य न्यायाधीश मैसन के अल्पसंख्यक मत वाले निर्णय के विचार को स्वीकार किया गया है । न्यूजीलैण्ड ने भी वर्ष 1996 में अपने लिमिटेशन एक्ट, 1950 में संशोधन कर लिया है और इस संशोधन में धारा 28क से धारा 28ग जोडकर विदेशी परिसीमा विधि को मूल विधि के रूप में स्वीकार कर लिया है । कनाडा ने अपनी विधि में टोलोफसन बनाम जैनसन 1994(3) एस सी आर 1022, मामले में निर्णय जनित विधि द्वारा संशोधन कर लिया है । अमरीका में यूनिफार्म कनफ्लिक्ट अफफ लॉज लिमिटेशन एक्ट, 1982 द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि विदेशी परिसीमा विधि को विचारण करने वाले देश में मूल विधि समझा जाए और आर्केनसास, कोलोराडो, मॉन्टाना, नार्थ डकोटा, ऑरेगॉन और वाशिंगटन में तद्नुसार विधिया अधिनियमित की

गईं । अमरीका के कुछ अन्य दूसरे राज्यों में न्यायालयो के निर्णयों द्वारा विधि में परिवर्तन किए गए ।

सभी कॉमन विधि अधिकारिताओं में किए गए परिवर्तनों से विधि को सिविल विधि वाले देशों के स्तर पर लाए जाने को ध्यान में रखते हुए विधि आयोग ने 1963 के अधिनियम से वर्तमान धारा 11 का लोप करना और उसके स्थान पर नई धारा 11 केवल विदेशों में की गई संविदाओं से संबंधित परिसीमा विधि के बारे में है और भारत में प्रमुख लेखकों का कहना है कि परिसीमा विधि में विदेशों में उत्पन्न होने वाले अन्य दायित्वों के बारे में भी, जैसेकि अपकृत्यों के अधीन उत्पन्न होने वाले दायित्व, नियम अन्तर्विष्ट होने चाहिए । हमने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है । इसके साथ ही भारतीय विधि का अपने एकमात्र अपवाद में, धारा 11(2) के अधीन यह कहना है कि यदि विदेशी विधि के अधीन विदेशी संविदा निर्वापित हो जाती है और सभी पक्षकार नियम द्वारा विहित काल के दौरान उस विदेश के अधिवारी हैं तो भारतीय न्यायालय उस विदेशी को कोई प्रतिरक्षा प्रदान नहीं करेंगे जो भारत में वाद संस्थित करता है । भारतीय टीकाकारों ने कहा है कि विदेश का अधिवासी होना कालदोष है और इसे निकाला जाना चाहिए । हमने इस सुझाव को भी स्वीकार कर लिया है । वास्तव में, इस समय किसी भी देश में ऐसा उपबंध नहीं है । हमारा मत यह है कि विदेशी परिसीमाकाल भारत मे भी मूल विधि के रूप में लागू होना चाहिए और यदि उस विधि के अनुसार अधिकार निर्वापित हो गए हैं तो वह लागू की जानी चाहिए । तथापि, हम प्रस्ताव करते हैं कि इस विषय को भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से धार 24 तक के उपबंधों के अधीन रखा जाना चाहिए । प्रस्तावित नई धारा 11 जम्मू और कश्मीर या किसी अन्य देश में की गईं संविदाओं से उद्भूत अधिकारों या उद्भूत होने वाले किसी अन्य दायित्व को शासित करने वाले परिसीमा काल के लिए लागू होगी ।

जहां तक विदेशी डिक्रियों के निष्पादन का संबंध है, भारत में धारा 11 में अन्तर्निहित सिद्धान्त लागू किए जाते हैं क्योंकि इस विषय के संबंध में कोई अन्य विशिष्ट धारा या अनुच्छेद नहीं है । इसलिए, धारा 11क के रूप में एक नई शारा अन्तःस्थापित की जा रही है जो धारा 11 में अन्तर्निहित (अर्थात् धारा 4 से धारा 12 तक भी) सिद्धान्तों के लिए लागू होगी और एक नया अनुच्छेद 136क अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव किया जा रहा है जो विदेशी डिक्रियों के निष्पादन के संबंध में (व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों में वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियां, सिविल

प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क में अधिकथित) भारत में वही परिसीमा अवधि लागू होगा जो विदेशी विधि में अपने देश की डिक्री के निष्पादन के लिए विहित किया गया है और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44 के अनुसार काल का प्रारम्भ उस तिथि से माना जाएगा जिसको डिक्री की प्रमाणित प्रति जिला न्यायालय में फाइल की गई है। जहां तक जम्मू और कश्मीर राज्य में पारित डिक्रियों का संबंध है, यह विषय निर्णित मामलों के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 43 के अन्तर्गत आता है और हम उस स्थिति में कोई परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं । प्रस्तावित अनुच्छेद 136क सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44 के स्पष्टीकरण में कथित व्यतिकारी देशों में वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियों के निष्पादन के बार में है । इस प्रकार जम्मू और कश्मीर राज्य में पारित डिक्रियां प्रस्तावित धारा 11क के अधीन नहीं आएंगी ।

हमने इस बात को भी ध्यान में रखा है कि प्रस्तावित परितर्वन इस अर्थ में भविष्यलक्षी प्रभाव से होंगे कि प्रस्तावित धारा 11, जो जम्मू और कश्मीर राज्य या किसी विदेश में उद्भूत होने वाले वाद हेतुक के संबंध में भारत में संस्थित किए गए वादों के लिए लागू होती है, उन वाद हेतुकों के लिए लागू नहीं होगी जो इस प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ होने की तिथि से पूर्व उद्भूत हुए होंगे । इसी प्रकार, हमने यह उपबंध किया है कि प्रस्तावित धारा 11क और नया अनुच्छेद 136क व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों में प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम प्रारम्भ होने की तिथि से पूर्व विदेश में पारित डिक्रियों के निष्पादन के लिए लागू न हों ।

इस महत्वपूर्ण रिपोर्ट से, राष्ट्र-पार विवादों के संबंध में, भारतीय परिसीमा विधि सिविल विधि वाले देशों की विधि के अनुरूप तथा ब्रिटेन और अन्य समान विधि वाले देशों में हाल ही में किए गए परिवर्तनों के अनुरूप बनाना चाहते हैं ।

सादर,

भवदीय,
ह0
(न्यायमूर्ति एम0 जगन्नाथ राव)

श्री एच.आर. भारद्वाज,
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ सं0
एक	प्रस्तावना	7-12
दो	परिसीमा अधिनियम की धारा 11 (जिन राज्यक्षेत्रों पर इस अधिनियम का विस्तार है उनके बाहर की गई संविदाओं के आधार पर वाद)	13-16
तीन	कॉमन लॉ वाले देशों में प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि में आधुनिक विकास : प्रक्रिया संबंधी विधि से मूल विधि तक	17- ५२-
चार	भारतीय परिसीमा विधि में समस्याएं और परिवर्तन करने के लिए सिफारिशें	५३-५५
उपबंध -I	परिसीमा (संशोधन) विधेयक, 2005 का मसौदा	५६ - ५९

अध्याय -एक

प्रस्तावना

लगभग बयालीस वर्ष पूर्व, संसद द्वारा भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 पारित किए जाने के बाद से, विश्वपर्यन्त सभी कॉमन लॉ अधिकारिता वाले देशों में प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि में विधि विवाद्यकों के चयन के संबंध में परिसीमा विधि में परिवर्तन हो गए हैं । अन्तरराष्ट्रीय व्यापार भी बहुत तेजी से बढा है । 1991 में अपनी अर्थ व्यवस्था को खोलने से,भारत में प्रवृत्त विभिन्न विधियों का पुनर्विलोकन हो रहा है ताकि उन्हें अन्तरराष्ट्रीय व्यापार पद्धतियों और विधियों में परिवर्तन के अनुरूप बनाया जा सके । इनमे भारतीय माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 भी एक ऐसा ही महत्वपूर्ण विधान है ।

राष्ट्र-पार मुकदमे में उद्भूत होने वाले विवादों को शासित करने वाली विधियों का एक विशिष्ट परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलु परिसीमा का लागू होना और विधि का चुनाव है ।

भारतीय परिसीमा कानूनों का संक्षिप्त इतिहास :

परिसीमा अधिनियम, 1908 विषय पर विधि आयोग की तीसरी रिपोर्ट के परिणामस्वरूप परिसीमा अधिनियम, 1908 का निरसिन (1956) और 1963 के विद्यमान अधिनियम को अधिनियमित किया गया जो तारीख 1.1.1964 से प्रवृत्त हुआ ।

संक्षेप में, यदि हम इसके इतिहास को देखे तो हम कह सकेंगे कि वर्ष 1862 से पूर्व सम्पूर्ण भारत में लागू होने वाली कोई भी परिसीमा विधि नहीं थी । 21 जेम्स आई सी 4 एन. सी 16 (1) में यथा अन्तर्विष्ट इंग्लिश परिसीमा विधि को अंगीकार किया गया था जब ब्रिटिश ने कलकत्ता उच्चतम न्यायालय की स्थापना की थी । जहां तक प्रान्तीय न्यायालयों का संबंध है, वे प्रारम्भ में कतिपय विनियमों द्वारा शासित होते थे जैसे बंगाल विनियम III (1793) जिसका विनियम VII (1795) द्वारा कतिपय अन्य प्रान्तों तक विस्तार किया गया था, विनियम II (1805) और विनियम II (1805) ; 1802 का विनियम II मद्रास को लागू होता था और

1800 का विनियम I और 1827 का विनियम V बम्बई को लागू होता था । इन विनियमों को 1845 के परिसीमा अधिनियम I , फिर 1848 के अधिनियम विनियम XIII और 1859 के अधिनियम XI द्वारा प्रतिस्थापित किया गया ।

तत्पश्चात्, 1871 में वादों, अपीलों और न्यायालयों में कतिपय आवेदनों के लिए परिसीमा का उपबंध करने के लिए तथा भूमि और आनुवांशिक पदों और सुखाचार के अर्जन के निर्वापन के लिए भी उपबंध करने हेतु पारित किया गया । 1871 का अधिनियम IX , 1877 के अधिनियम XV द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जिसमें न केवल भूमि और आनुवांशिक पदों के लिए अपितु जंगम सम्पत्ति सहित किसी भी सम्पत्ति के अधिकार के निर्वापन के लिए उपबंध किए गए थे । इसमें अर्जित होने वाले लाभों सहित सुखाचारको भी परिभाषित किया गया था । यह अधिनियम, 1908 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया । 1908 का अधिनियम समय-समय पर संशोधित किया गया था ।

जैसाकि पहले भी बताया गया है, भारत के विधि आयोग की तीसरी रिपोर्ट के परिणामस्वरूप 1908 के अधिनियम को निरसित करके वर्तमान परिसीमा अधिनियम, 1963 अधिनियमित किया गया ।

चिरभोग, अर्जन और उपचारों का वर्जन :

परिसीमा विधि में, सामान्यतः तीन अवधारणाएं, अर्थात्, चिरभोग, अर्जन और न्यायिक उपचारों का वर्जन, हैं ।

चिरभोग :

1963 का अधिनियम, अन्य मामलों के साथ चिरभोग से भी संबंधित है । यह सर्वविदित है कि कोई विधि जो चिरभोग की अवधि विहित करती है, वह किसी विनिर्दिष्ट अवधि के समाप्त होने पर केवल न्यायिक उपचार का वर्जन करने के बजाय सम्पत्ति पर हक को ही निर्वापित कर देती है । जहां तक जंगम और स्थावर सम्पत्ति का संबंध है, ऐसा उपबंध अधिनियम की धारा 27 में अन्तर्विष्ट है जिसका पाठ निम्नलिखित है :-

"धारा 27. सम्पत्ति पर अधिकार का निर्वापन होना :

उस कालावधि के पर्यावसान पर, जो किसी सम्पत्ति के कब्जे का वाद संस्थित किए जाने के निमित्त किसी व्यक्ति के लिए परिसीमित है, ऐसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नर्वापित हो जाएगा ।"

क्योंकि सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार में कोई अंतराल नहीं होता, जब पहले स्वामी का सम्पत्ति पर हक निर्वापित हो जाता है तो यह काबिज व्यक्ति का हक चला जाता है और कब्जा रखने का उसका अधिकार स्वामित्व में अंतरित हो जाता है । धारा 27, जंगम और स्थावर सम्पत्ति दोनों के लिए लागू होती है । अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 65 के अधीन स्थावर सम्पत्ति पर प्रतिकूल कब्जाधारी व्यक्ति सम्पत्ति पर हक प्राप्त कर लेता है । ऐसा कब्जा स्पष्ट और निरन्तर और वास्तविक स्वामी के हक के विपरीत बारह वर्ष तक होना चाहिए ताकि वह व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे के द्वारा अपना हक विहित कर सके । जहां तक सरकारी सम्पत्ति का संबंध है, अनुच्छेद 112 में प्रतिकूल कब्जे के हक का चिरभोग करने के लिए तीस वर्ष की अवधि विहित की गई है ।

न्यायालयों द्वारा विकसित विधि के सिद्धान्तों के द्वारा भी प्रतिकूल कब्जे के द्वारा सीमित अधिकार प्राप्ति की अनुज्ञा प्रदान की गई है । उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति किसी गैर रजिस्ट्रीकृत बंधक विलेख के अधीन भोग-बंधककार की तरह कब्जाधारी है तो वह बारह वर्ष तक कब्जा रखने के पश्चात् भोग-बंधक के सीमित अधिकार प्राप्त कर लेगा ।

सुखाचारी अधिकारों का अर्जन :

जहां तक सुखाचारी अधिकारों के अर्जन का संबंध है, धारा 25 चिरभोग द्वारा ऐसे अधिकारों के अर्जन का निर्देश करती है । धारा 25 में कहा गया है कि यदि किसी भवन में या उसके लिए प्रकाश या वायु के प्रवेश और उपयोग का उपभोग किसी सुखाचार के तौर पर और सहअधिकार, किसी विघ्न के बिना और बीस वर्ष तक शान्तिपूर्वक किया गया हो तो, उपभोग करने वाला दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति पर सुखाचारी अधिकार प्राप्त कर लेता है । जहां तक

सरकारी सम्पत्ति पर सुखाचार अधिकारों के अर्जन का संबंध है, धारा 25(3) में तीस वर्ष के चिरभोग की अपेक्षा की गई है ।

न्यायिक उपचारों का वर्जन :

परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची में विभिन्न अनुच्छेदों की सूचियां है जिनमें वादों और आवेदनों के लिए परिसीमा अवधि के उपबंध किए गए हैं, जैसाकि प्रथम खंड (भाग I से भाग X) , दूसरे खंड और तीसरे खंड (भाग I से भाग II) में बताया गया है । उनमें उल्लिखित अवधि की समाप्ति पर न्यायिक उपचार वर्जित हो जाता है जबकि अधिकार बना रहता है । तथापि, अवधि की समाप्ति के पश्चात् अधिकार का न्यायालय में प्रवर्तन नहीं कराया जा सकता है । एकमात्र अपवाद (i) अधिनियम की धारा 27, जिसमें जंगम और स्थावर सम्पत्ति से संबंधित अधिकार स्वयं ही निर्वापित हो जाता है, और (ii) धारा 25 है जिसमें दूसरे की सम्पत्ति पर सुखाचार अधिकार का अर्जन किया जाता है ।

अधिनियम की धारा 3 मे कहा गया है कि धारा 4 से धारा 24 (जिसमें दोनों धाराएं सम्मिलित है) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए विहित अवधि के पश्चात् प्रत्येक संस्थित वाद और की गई अपील और किया गया आवेदन खारिज कर दिया जाएगा यद्यपि प्रतिरक्षा के तौर पर परिसीमा की बात उठाई न गई हो । धारा 3 का प्रभाव (धारा 25 के अधीन सुखाचारी अधिकारों के अर्जन और धारा 27 के अधीन सम्पत्ति के हक के निर्वापन के मामलों को छोडकर) यह है कि विशिष्ट श्रेणी की कार्यवाही के बारे में अनुसूची में उल्लिखित अवधि की समाप्ति पर न्यायिक उपचार वर्जित हो जाता है परन्तु अधिकार विद्यमान रहता है । 1984 से पूर्व इंग्लैण्ड में भी ऐसी ही स्थिति थी ।

अधिकार के निर्वापन और उपचार वर्जन में विभेद :

यह हमें कॉमन लॉ में उपचार वर्जन और अधिकार निर्वापन के सर्वविदित विभेद की ओर ले जाता है । यदि धारा 3 उपर्युक्त रीति में उपचार के आधिकार को वर्जित करती है तो अवधि के समाप्त होने पर क्या होता है कि अधिकार निर्वापित नहीं होता परन्तु उस अधिकार के संबंध

में विधिक कार्यवाहियां करने का उपचार वर्जित हो जाता है । परन्तु स्पष्ट उपबंधों के कारण धारा 27 के अन्तर्गत आने वाली सम्पत्ति की दशा में न केवल सम्पत्ति को वापस करा लेने का उपचार वर्जित हो जाता है बल्कि सम्पत्ति पर स्वामी का अधिकार या हक भी स्वयं निर्वापित हो जाता है । धारा 25 के अधीन सुखाचार का अधिकार दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति में अर्जन किया गया गया अधिकार है । परन्तु, यद्यपि धारा 3 के अधीन न्यायिक उपचार वर्जित हो जाता है फिर भी ऐसे वर्जित अधिकार का प्रतिवाद धारा 3 द्वारा निर्वापित नहीं किया गया और इसलिए अधिकार पर आधारित प्रतिवाद फिर भी किया जा सकता है ।

धारा 3 का एक और महत्व यह है कि न्यायालय को अनुसूची में यथा उपबंधित परिसीमा विधि को उसकी न्यायिक अपेक्षा करते हुए, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि प्रतिवादी ने या विपक्षी पक्षकार ने प्रतिरक्षा में परिसीमा का तर्क दिया है अथवा नहीं, लागू करना है ।

प्रक्रिया संबंधी विधि अथवा मूल विधि :

अब हम दूसरे महत्वपूर्ण और बहु प्रचलित सिद्धान्त, जो इस रिपोर्ट की विषय-वस्तु के लिए महत्वपूर्ण है, का निर्देश करेंगे । इंग्लैण्ड में और भारत में तथा बहुत से कॉमन लॉ देशों में, परिसीमा विधि को काफी समय से प्रक्रिया संबंधी विधि माना गया है न कि मूल विधि । प्रक्रिया विधि वह विधि है जिसका संबंध न्यायालय की प्रक्रिया से है, जिसका अनुसरण अपने अधिकारों का सत्यापन करने के लिए पक्षकारों द्वारा किया जाता है । उक्त प्रक्रिया के माध्यम से पक्षकार न्यायालय में जिन अधिकारों का सत्यापन कराना चाहते हैं, अधिष्ठायी अधिकार होते हैं । हम इन पहलूओं के बारे में अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे । प्रकिया विधि जब कभी बनाई जाती है तो, वह सभी लंबित कार्यवाहियों के लिए लागू होती है जब तक कि विधान-मंडल उसको भविष्यलक्षी प्रभाव नहीं दे देता । दूसरी ओर मूल विधि का प्रभाव उसके लागू होने में सदैव भविष्यलक्षी होता है जब तक कि विधान-मंडल इसे भूतलक्षी प्रभाव प्रदान नहीं करता है । जबकि विधि का यह सामान्य सिद्धान्त कि किसी भी कानून का भूतलक्षी प्रभाव नहीं समझा जाएगा जब तक कि उसकी भाषा से इस प्रकार का आशय स्पष्टतः परिलक्षित न होता हो । प्रक्रिया संबंधी कानून के लिए यह सिद्धान्त नहीं अपनाया जाता है । इसका कारण यह है कि व्यक्तियों में निहित उनके मूल अधिकारों में विधान द्वारा स्पष्ट भाषा या आवश्यक विवक्षा के सिवाय, हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जबकि प्रक्रिया विधि के संबंध में स्थिति भिन्न है । ऐसा इसलिए है कि

प्रक्रिया के किसी विशिष्ट स्वरूप या पुराने स्वरूप में किसी का कोई निहित अधिकार नहीं होता है ।

उपर्युक्त के संदर्भ में परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 11 में जम्मू-कश्मीर में या भारत के राज्यक्षेत्रों से बाहर की गई संविदाओं पर आधारित वादों के संबंध में विशेष उपबंध करती है और हम उनका निर्देश अध्याय-दो में करेंगे और आधुनिक विकास की दृष्टि से, जिसका निर्देश हम अध्याय-तीन में करेंग, नए उपबंध प्रतिस्थापित करने के लिए अपने प्रस्तावों का निर्देश बाद में अध्याय-चार में करेंगे ।

अध्याय -दो

परिसीमा अधिनियम की धारा 11 (जिन राज्यक्षेत्रों पर इस अधिनियम का विस्तार है उनके बाहर की गई संविदाओं के आधार पर वाद)

परिसीमा अधिनियम, 1963 का विसतार जम्मू और कश्मीर के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है । परन्तु धारा 11 उन राज्यक्षेत्रों से बाहर जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, की गई संविदाओं आधार पर किए गए वादों के लिए विशिष्ट उपबंध करती है ।

धारा 11 का पाठ निम्नलिखित है :

"धारा 11. (1) जम्मू और कश्मीर राज्य या विदेशों में की गई संविदाओं के आधार पर उन राजयक्षेत्रों में जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, संस्थित किए गए वाद इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट परिसीमा विषयक नियमों के अध्यधीन होंगे ।

(2) जम्मू और कश्मीर राज्य या किसी विदेश में प्रवृत्त परिसीमा विषयक कोई भी नियम उस राज्य या विदेश में किसी संविदा पर आधारित वाद में, जो उक्त राज्यक्षेत्रों में संस्थित किया गया हो, तब के सिवाय प्रतिरक्षा न होगा जबकि -

(क) उस नियम में संविदा को निर्वापित कर दिया गया हो ; और

(ख) पक्षकार ऐसे नियम द्वारा विहित काल के दौरान उस राज्य या विदेश के अधिवासी थे ।"

धारा 11 (1) और 2(क) में 1963 में इस अधिनियम के पारित होने के समय प्रचलित सिद्धान्तों को मूर्त रूप दिया गया है । उस समय इंग्लैण्ड में यह विधि थी कि विदेशों में (अर्थात् इंग्लैण्ड से बाहर) की गई संविदाओं के आधार पर इंग्लैण्ड में फाइल किए गए अनुयोगों के बारे में, क्योंकि परिसीमा विधि प्रक्रियात्मक थी, इंग्लिश परिसीमा विधि लागू होती थी न कि उस देश

की विधि जहां संविदा की गई थी । तथापि, एक अपवाद यह था कि यदि विदेशी परिसीमा विधि से विदेश में अधिकार निर्वापित हो गया था तो इंग्लिश न्यायालय विदेशी विधि को लागू करते हुए यह अभिनिर्धारित करेंगे कि इंग्लिश विधि में विहित परिसीमा अवधि में इंग्लैण्ड में वाद फाइल किए जाने पर भी अधिकार निर्वापित हो गया था । यह अपवाद भारत में भी लागू होता था ।

ह्यूबर बनाम स्टीमर (1835) 2 विंग (एम सी) 202 (210-212) मामले में मुख्य न्यायाधीश टिंडाल निम्नलिखित विचार व्यक्त किया था :

> "विधि का उतना भाग जो संविदा के अधिकारों और गुणागुण को प्रभावित करता है, जो सभी "वाद विनिश्चयों" से संबंधित है, विदेश से अंगीकृत किया जाता है, विधि का उतना भाग जो केवल उपचार को प्रभावित करता है, "वाद विधायन" से संबंधित है, उस देश की विधि से लिया जाता है, जहां अनुयोग लाया जाता है और इस नियम के निर्वचन में अनुयोग के परिसीमा की अवधि पश्चातवर्ती भाग के अन्तर्गत आता है और उसे उस देश की विधि द्वारा शासित किया जाता है जहां अनुयोग लाया जाता है न कि "संविदाकारी देश की विधि" द्वारा जो अनेक प्रमाणिकताओं से स्पष्ट है ..... यह विधि का साधारण नियम है जिसमें प्रतिपक्षी के विद्वत काउंसेल द्वारा यह विभेद करने की वांच्छा की गई है कि "जहां किसी विशिष्ट देश के परिसीमा कानून न केवल अनुयोग के अधिकार को अपितु दावे या उसके हक के अधिकार को भी, यथातथ्यतः, निर्वापित करते हैं और विहित अवधि के व्यपगत होने के पश्चात् उसे अकृत घोषित करते हैं वहां ऐसे मामलों में कानून को किसी अन्य देश में, जिसमें पक्षकार चले जाते हैं, निर्वापन के रूप में प्रवृत्त किया जा सकता है" । वस्तुतः यह युक्तियुकत प्रतीत होता है कि "संविदाकारी देश की विधि" के उस भाग को, जो हस्तक्षेपकारी किसी वाद के बिना कतिपय सीमित समय पर संविदा को पूर्णतया शून्य घोषित करता है, विदेश द्वारा "संविदाकारी देश की विधि" के उस भाग के रूप में, जो संविदा को जीवित रखती है और उसके गठन को विनियमित करती है, समान रूप में माना जाना चाहिए ।"

उपर्युक्त ह्यूबर बनाम स्टीमर मामले में फ्रांस की विधि द्वारा शासित प्रॉमिजरी नोट पर इंग्लैण्ड के सामान्य न्यायालय में एक अनुयोग संस्थित किया गया था और प्रतिरक्षा में यह कहा गया था कि अनुयोग फ्रांस की चिरभोग विधि द्वारा वर्जित था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि फ्रांस के नियम का प्रभाव केवल उपचार को वर्जित करता है और यह कि फ्रांस का नियम इंग्लैण्ड के अनुयोग के लिए कोई प्रतिरक्षा नहीं था । मुख्य न्यायाधीश टायंडल द्वारा अधिकथित अपवाद के अनुसार स्थिति यह होगी कि यदि फ्रांस की विधि द्वारा दावे या हक को ही निर्वापित कर दिया जाता है या विहित अवधि के पश्चात् संविदा को शून्य घोषित कर दिया जाता है तो इंग्लिश न्यायालय राहत देने से इंकार कर देगा ।

उपर्युक्त निर्णय का अनुसरण भारत में भी बहुत से मामलों में किया गया है । उदाहरण. के लिए : मुथुकन्नी बनमा अनदप्पा : ए आई आर 1955 मद्रास 96 (एफ बी) देखे ।

ह्यूबर बनाम स्टीमर मामले की भांति ही धारा 11 में भी वही सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं । धारा 11 की उपधारा (1) में कहा गया है कि जम्मू और कश्मीर या किसी विदेश में की गई संविदाओं के बारे में, वाद द्वारा कोई अनुयोग भारत में संस्थित किया जाता है तो उस मामले में लागू की जाने वाली परिसीमा विधि उस देश में लागू होने वाली विधि नहीं होगी जहां संविदा की गई थी अपितु उस मामले में भारतीय परिसीमा अधिनियम लागू होगा । धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन प्रतिवादी जम्मू और कश्मीर या विदेश के लिए लागू होने वाली विधि का आश्रय नहीं ले सकेगा तब के सिवाय (1) जहां जम्मू और कश्मीर या विदेश के नियम द्वारा संविदा निर्वापित कर दी गई है ; और (2) पक्षकार ऐसे नियम द्वारा विहित अवधि के दौरान उस राज्य या विदेश के अधिवासी थे ।

यह स्वीकार कर लिया गया है कि यद्यपि धारा केवल वादों के लिए लागू होती है परन्तु यह जिस सिद्धान्त पर यह आधारित है वह किसी विदेशी निर्णय को कार्यान्वित कराने के लिए निष्पादन आवेदन के लिए भी लागू होता है । दूसरे शब्दों में, भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुसार निर्धारित परिसीमा अवधि धारा 11 (2) (ख) में अधिकथित अपवाद के सिवाय लागू होगा ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कॉमन लॉ द्वारा शासित राष्ट्रमंडलीय देशों में, अभी पूर्व तक, परिसीमा विधि को प्रक्रियात्मक माना गया है और यदि किसी ऐसे हेतुक के आधार पर जो किसी अन्य देश में घटित हुआ था, किसी देश में कोई अनुयोग संस्थित किया जाता है तो उस देश की परिसीमा विधि लागू होगी जिस देश में न्यायालय में अनुयोग संस्थित किया गया है न कि उस देश की जहां हेतुक घटित हुआ था जब तक कि विधि में यह अधिकथित न किया गया हो कि अवधि के पर्यवसान के साथ अधिकार भी निर्वापित हो जाएगा परन्तु, सिविल विधि वाले देशों में, विधि यह है कि परिसीमा विधि मूल विधि है और अवधि के पर्यवसान पर अधिकार और उपचार दोनों ही निर्वापित हो जाएंगे और इस प्रकार विदेशी परिसीमा विधि लागू नहीं होगी और हेतुक सृजित होने वाले देश की परिसीमा विधि ही लागू होगी ।

हम अध्याय - तीन में इस विषय पर चर्चा करेंगे कि कॉमन लॉ वादे देशों ने, हाल ही में, राष्ट्र-पार मुकदमों के मामलों में, जिनमें एक से अधिक देश अन्तर्ग्रस्त हैं, परिसीमा विधि को मूल विधि मानते हुए एक परिवर्तन किया है और इस प्रकार कॉमन लॉ देशों में संस्थित किए गए अनुयोगों में विदेशी विधि को प्रवर्तनीय बनाया है ।

अध्याय - तीन

कॉमन लॉ वाले देशों में प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि में आधुनिक विकास : प्रक्रिया संबंधी विधि से मूल विधि तक

चैशायर और नार्थ के इन्टरनेशनल लॉ के अनुसार (13वां संस्करण, 1999) (पृष्ठ 67-68), किसी अनुयोग में, जिसमें विदेशी विधि का प्रवर्तन अन्तर्ग्रस्त है, विधि के नियमों का, मूल या प्रक्रियात्मक के रूप में विशेषीकरण महत्वपूर्ण है । उन्होंने कहा है :

> "प्रत्येक प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधिक प्रणाली का एक सार्वभौम सत्य यह है कि सार और प्रक्रिया, अधिकार और उपचार के बीच अन्तर किया जाना चाहिए । किसी अनुयोग में पक्षकारों के सारभूत अधिकार किसी विदेशी विधि द्वारा शासित हो सकेंगे परन्तु प्रक्रिया से संबंधित सभी मामले उस देश की विधि द्वारा शासित होते हैं जिसमें किसी अनुयोग पर विचारण होता है " (ह्यूमर बनाम स्टीमर (1835) विंग एन सी 202 ; चैपलिन बनाम बोयस : 1971 ए सी 356)

मूल तथा प्रक्रिया संबंधी विधि के बीच अन्तर का कारण यह है कि अनुयोग का विचारण करने वाले देश से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह उस देश की प्रक्रिया के प्रत्येक नियम को भी अपनाए जिसकी विधि को वह लागू करना चाहता है । विचारण करने वाले देश के नियम न्यायालय की सुविधा के लिए विद्यमान हैं और वहां के न्यायाधीश उन्हें समझते हैं । वे विचारण न्यायालय की "परिणाम से भिन्न उसके तंत्र को प्रभावी बनाने में" सहायता करते हैं (पायज़र बनाम माइनर्स (1881) 7 क्यू बी डी 329 (पृष्ठ 333 पर) (न्यायमूर्ति लुसल एल.जे. के अनुसार) ।

चैशायर और नार्थ में भी कहा गया है (वही पृष्ठ 68) : "प्रक्रिया का क्षेत्र संभवतया किसी भी विधिक प्रणाली का सबसे बड़ा तकनीकी भाग है और उसमें ऐसे बहुत से नियम अन्तर्विष्ट होते हैं जो किसी भी विदेशी न्यायाधीश के लिए अस्पष्ट होते हैं और विभिन्न पद्धतियों पर व्यवस्थित तंत्र के लिए निश्चित रूप से व्यवहारिक नहीं होते हैं । इंग्लैण्ड में किसी

वाद के पक्षकार को प्रक्रिया विधि को जैसी वह है उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए । वह पक्षकार अपने देश के किसी नियम के कारण ये यहां के अन्य पक्षकारों की तुलना में अधिक लाभ नहीं उठा सकता ; न ही उसे ऐसे किसी लाभ से वंचित किया जा सकता जो किसी अनुयोग के किसी विशिष्ट विचारण न्यायालय द्वारा उस पक्षकार को प्रदान किया गया है ।

चैशायर और नार्थ (वही पृष्ठ 70-72) में आगे न्यायविदों द्वारा इस आशय के विचारों की चर्चा की गई है कि प्रक्रिया तथा सार में किस प्रकार से अन्तर किया जाना चाहिए और उन्होंने बताया है कि किसी विषय की परीक्षा प्रक्रिया के विशिष्ट विषयों के संदर्भ में पृथक-पृथक मामले के आधार पर की जानी चाहिए । जहां तक प्रक्रिया की तामील जैसे सामान्य मामलों का संबंध है, जैसे अनुयोग का स्वरूप क्या होना चाहिए और क्या कोई विशिष्ट प्रक्रिया अनुज्ञेय है ; अनुयोग का हक (उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति द्वारा और किन व्यक्तियों के विरूद्ध यह लाया जाना चाहिए) ; साक्षियों की सक्षमता और साक्ष्य की ग्राह्यता ; न्यायाधीशों और ज्यूरी के अपने अपने कृत्य ; अपील करने का अधिकार और कुछ लेखकों के अनुसार) साबित करने का भार - स्पष्टया प्रक्रियात्मक विषय हैं । तत्पश्चात्, लेखकों ने यह पता लगाने के लिए कि वे प्रक्रियात्मक हैं या मूल विधि के अन्तर्गत आते हैं, शीर्षक (क) से (ज) तक अन्य विभिन्न विशिष्ट विषयों के बारे में चर्चा की है । शीर्षक (क) के अधीन उन्होंने परिसीमा विधि के बारे में चर्चा की है जिससे इस समय हमारा संबंध है ।

इंग्लिश विधि में 1984 में किसी प्रकार परिवर्तन हुआ

1984 तक, इंग्लिश विधि में यह अधिकथित था कि परिसीमा विधियां, यदि उनमें केवल निश्चित समय विनिर्दिष्ट किया गया है, जिसके पश्चात् अनुयोग द्वारा अधिकार प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता तो उनसे प्रक्रिया प्रभावित होती है वास्तविकता नहीं । इस प्रकार, विचारण करने वाले देश का न्यायालय अपने देश की परिसीमा विधि को ही लागू करेगा । (ब्लैक क्लोसम इन्टरनेशनल लिमिटेड बनाम पैपियरवरके वाल्टोफ - एशफेनबर्ग ए जी)(1975 ए सी 591 पृष्ठ 630) एम चैशायर एण्ड नार्थ (वही पृष्ठ 73) ने 1984 पूर्व की विधि में एकमात्र निम्नलिखित अपवाद का निर्देश किया है :

"तथापि, जहां यह दर्शाया जा सके कि परिसीमा विधि का प्रभाव इस प्रकार का है कि यदि विदेशी प्रवर्तनीय विधि न केवल दूसरे वादी के उपचार को वर्जित करती है अपितु वह वाद हेतुक को भी निर्वापित करती है तो (उदाहरण, इंग्लिश प्रैसक्रिप्शन एक्ट, 1832 के अधीन अधिग्राही चिरभोग अधिकार द्वारा या यू.के. लिमिटेशन एक्ट, 1980 की धारा 3 और धारा 17 के अधीन भूतपूर्व स्वामी के हक के स्पष्ट विलोप द्वारा उदाहरण दिए गए हैं) इंग्लिश न्यायालय विदेशी नियम को मूल या अधिष्ठायी नियम के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार है और उसे यहां लागू किया जा सकेगा" (हैरिस बनाम क्वाइन) (1869) एल आर 4. क्यू बी 653 (656) ।

उपर्युक्त अपवाद (ऊपर निर्देशित किए जा चुके) ह्यूबर बनाम स्टीमर मामले में भी अन्तर्विष्ट था । तत्पश्चात् लेखकों ने कहा है कि कॉमन लॉ नियम की विभिन्न कॉमन लॉ वाले देशों मे आलोचना की गई है (ब्रिटिश कॉमन लॉ रिपोर्ट सं0 114 (1982) पैरा 3.3 से 3.8) और यह कि उपर्युक्त नियम का सिविल विधिक प्रणाली में कोई प्रतिरूप नहीं है जिसमें परिसीमा विधि को सामान्यतया मूल विधि के रूप में समझा जाता है । (ब्रिटिश लॉ कमीशन वर्किंग पेपर सं0 75 (1980) पैरा 25-26) । उन्होंने कहा है कि इसके अतिरिक्त, कान्ट्रेक्टस् (व्यवहार्य विधि) एक्ट, 1990 में, जो संविदात्मक दायित्वों के लिए लागू होने वाली विधि के बारे में यूरोपीय कम्यूनिटी कन्वेंशन को कार्यान्वित करता है, यह उपबंध किया गया है कि जो विधि किसी संविदा की विधिमान्यता को शासित करती है उससे दायित्वों को निर्वापित करने के विभिन्न उपाय, चिरभोग तथा अनुयोगों की परिसीमा भी शासित होगी " । ब्रिटिश विधि आयोग ने 1982 में अपनी 114वीं रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला था कि "वर्तमान इंग्लिश नियम में सुधार किया जाना चाहिए" और आयोग की सिफारिशों का अधार फॉरेन लिमिटेशन पीरियड्स एक्ट, 1984 था (देखे, काट्रर (1985), 101 लॉ क्वार्टरली रिव्यू 68 एण्ड सओन (1985) एल एम सी एल क्यू. 497) ।

1984 के अधिनियम में यह सामान्य सिद्धान्त अपनाया गया है कि उसने कॉमन लॉ के इस दृष्टिकोण को त्याग दिया है जो देशी परिसीमा विधि को लागू करने को प्राथमिकता देता है । अब, इंग्लिश न्यायालय उस विधि को लागू करेंगे जो विधि नियमों के इंग्लिश विकल्प के अनुसार सारभूत विषय को शासित करती है और इंग्लैण्ड में यह नया दृष्टिकोण अनुयोगों तथा

माध्यस्थमों दोनों के लिए लागू होता है । लेखक चैशायर और नार्थ ने इस परिवर्तन का निम्नलिखित शब्दों में स्वागत किया है (वही पृष्ठ 74) :

> "कोई नियम जिसके अधीन इंग्लैण्ड में किसी दावे को विधि वर्जित अभिनिर्धारित किया जाता है, यदि शासित करने वाली विधि के अधीन विधि बाधित है तो, ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें सुधार की व्यापक रूप से सराहना की जाएगी और इस नियम के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है कि यदि उसके अधीन दावा विदेश में विधि वर्जित नहीं है, इंग्लैण्ड में भी उसकी अनुमति होनी चाहिए ।"

यह ठीक है कि यदि विदेश में अवधि बहुत बडी है तो 1984 के अधिनियम में लोकनीति के आधार पर उस अवधि को लागू न किए जाने की अनुज्ञा दी गई है ।

पी.बी. कार्टर द्वारा उपर्युक्त निर्दिष्ट 'दी फॉरेन लिमिटेशन पीरियडस् एक्ट, 1984' लेख में (1985) (101 लॉ क्वार्टरली रिव्यू पृष्ठ 68-78) लेखक ने कहा है (पृष्ठ 68) :

> "इंग्लिश प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि की यह परम्परा रही है कि अनुयोगों की परिसीमा के प्रश्नों को प्रक्रियात्मक माना गया है । इस प्रकार उस अवधि की सीमा के विनिश्चय के लिए, जिसके अन्तर्गत इंग्लिश न्यायालय में उपचारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए, इंग्लिश देशी विधि के नियम लागू किए जाते रहे हैं चाहे मूल प्रश्नों को शासित करने वाली किसी अन्य देश की विधि ही हो ।"

उसने कहा है कि उपर्युक्त दृष्टिकोण अपनाने में, कॉमन लॉ की परम्परा बहुत से सिविल विधि वाले देशों के स्पष्ट विपरीत है, कतिपय न्यायाधीशों और न्यायविदों ने इसे उचित ठहराया है । ह्यूबर बनाम स्टीमर (1835) 2 बिंग एन सी 202 (उपर्युक्त निर्दिष्ट) मामले में मुख्य न्यायाधीश टिंडाल के विचारों का निर्देश करने के पश्चात् और यह कहने के पश्चात् कि परिसीमा विधि का विशिष्ट लक्षण प्रक्रियात्मक बताने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं है, कार्टन ने कहा है : कोई अनुयोग जो विधिक कारणों से, (किसी अन्य देश की विधि द्वारा) विधि वर्जित है (अधिकार के निर्वापित होने पर या उपचार के निर्वापित हो जाने पर) इंग्लैण्ड में ग्राह्य नहीं

होना चाहिए । अन्यथा वादी को विधि वर्जित विदेशी अनुयोगों को विचारण के लिए इंग्लैण्ड में संस्थित करने की स्वतंत्रता मिल जाएगी । इसलिए, विधि में सुधार किए जाने की आवश्यकता है और उसने कहा है कि यह उद्देश्य (यू.के.) फॉरेन लिमिटेशन पीरियडस् एक्ट, 1984 द्वारा प्राप्त कर लिया गया है ।

हमने देखा है कि बहुत से न्यायविदों और न्यायाधीशों ने कहा है कि राष्ट्र-पार मुकदमों के मामले में कॉमन लॉ की अवधारणा में परिवर्तन करना आवश्यक है ताकि विचारण के लिए वादों का इंग्लैण्ड में संस्थित किया जाना रोका जा सके । कुछ देशों में न्यायालयों ने निर्णयजनित विधि द्वारा इस सिद्धान्त में परिवर्तन किया है जबकि कुछ अन्य देशों में, जहां न्यायालयों में इस विषय में मतभेद था और उन्होंने कॉमन लॉ की स्थिति को ही स्वीकार किया था वहां विधानमंडल द्वारा व्यवहार्य सिद्धान्तों में परिवर्तन किया गया । कॉमन लॉ वादे देशों में, 1984 का यू.के. अधिनियम संभवतया देश की परिसीमा विधि की स्थिति में परिवर्तन करने वाला सर्वप्रथम अधिनियम है, जहां, जब कोई अनुयोग ब्रिटेन में संस्थित किया जाता है, लागू किए जाने के लिए वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ हो ।

1984 के इंग्लिश अधिनियम के, धारा 1 में अन्तर्विष्ट सुसंगत उपबंध निम्नलिखित हैं :

" विदेशी परिसीमा विधि का लागू किया जाना :

1.- (1) इस अधिनियम के निम्नलिखित उपबंधों के अध्यधीन, जहां इंग्लैण्ड और वेल्स में किसी न्यायालय में किसी अनुयोग या कार्यवाही में किसी अन्य देश की विधि (किसी ऐसे न्यायालय द्वारा लागू की गई किसी प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार) को किसी मामले का विनिश्चय करने में ध्यान में रखा जाएगा -

(क) उस मामले के बारे में, अनुयोग या कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए परिसीमा से संबंधित उस देश की विधि लागू होगी ; और

(ख) जहां वह मामला निम्नलिखित उपधारा (2) के अधीन आता है उसके सिवाय, परिसीमा से संबंधित इंग्लैण्ड और वेल्स की विधि इस प्रकार लागू नहीं होगी ।

(2) वह मामला इस उपधारा के अधीन आएगा यदि उसके विनिश्चय करने में इंग्लैण्ड और वेल्स तथा किसी अन्य देश की विधि को ध्यान में रखना होगा ।

(3) उपर्युक्त उपधारा (1)(क) के आधार पर किसी विधि के लागू होने के प्रयोजन से इंग्लैण्ड और वेल्स की विधि यह विनिश्चय करेगी कि क्या, और किसी समय, उस मामले के बारे में कार्यवाहियां आरम्भ हुई हैं, और तद्नुसार, उपर्युक्त उपधारा (1)(क) के आधार पर लागू होने वाली समय सीमा के संबंध में (नए दावों और लम्बित कार्यवाहियों के लिए) 1980 के लिमिटेशन एक्ट की धारा 35 लागू होगी जैसे कि यह अधिनियम के अधीन समय सीमा के लिए लागू होती है ।

(4) इंग्लैण्ड तथा वेल्स का कोई न्यायालय, उपर्युक्त उपधारा (1)(क) के अनुसरण में किसी अन्य देश की विधि द्वारा प्रदान किए गए विवेकाधिकार का प्रयोग यथा संभव रूप में उसी प्रकार से करेगा जिस प्रकार से किसी अन्य देश के न्यायालयों द्वारा इसी प्रकार के मामलों में उसका प्रयोग किया जाता है ।

(5) इस धारा में विधि में, किसी अन्य देश के संबंध में, उस देश के न्यायालयों द्वारा लागू किए जाने वाले प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि के नियम, इंग्लैण्ड और वेल्स के मामले में, सम्मिलित नहीं हैं ।"

हम यहां धारा 2 से धारा 7 तक के उपबंधों का निर्देश नहीं कर रहे हैं क्योंकि ये हमारे उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं हैं ।

आस्ट्रेलिया : मैकेन बनाम आर.डब्ल्यू मिलर एण्ड कम्पनी (साऊथ आस्ट्रेलिया) प्राइवेट लिमिटेड : (1992) 174 सी एल आर आई :

आस्ट्रेलिया में, ब्रिविंगटन बनाम गोडलमैन (1988) 169 सी एल आर मामले में न्यायाधीशों ने कॉमन लॉ से अलग जाकर मामले का बहुमत से निर्णय किया और यह अभिनिर्धारित किया कि आस्ट्रेलिया में किए गए अपकृत्यों के लिए दायित्व का विनिश्चय करने के लिए विचारण करने वाले देश की विधि लागू नहीं होती है । यद्यपि, मैकेन बनाम आर.डब्ल्यू मिलर एण्ड कम्पनी (साऊथ आस्ट्रेलिया) प्राइवेट लिमिटेड : (1992) खंड 174 सी एल आर आई I, मामले में न्यायाधीशों ने बहुमत से इस दृष्टिकोण के विपरीत निर्णय दिया । इस मामले में अपकृत्य कथित रूप से साऊथ आस्ट्रेलिया में किया गया था परन्तु अनुयोग साऊथ वेल्स में फाइल किया गया था क्योंकि अनुयोग साऊथ आस्ट्रेलिया में वर्जित था और साऊथ वेल्स में जीवित । न्यायाधीशों ने बहुतमत से कॉमन लॉ के नियम पर निर्भर किया और संक्षी व्यवस्था देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि न्यू साऊथ वेल्स में विचारण करने वाले देश की विधि लागू होती है और प्रतिवादी यह तर्क नहीं दे पाया है कि अनुयोग साऊथ आस्ट्रेलिया में विर्जत था । (इस स्थिति में सुधार करने के लिए आस्ट्रेलिया के अधिकांश राज्यों ने इस बीच, अपनी विधियों को 1984 के इंग्लिश एक्ट के अनुरूप परिवर्तित कर लिया है) । उपर्युक्त मामले में मुख्य न्यायाधीश मैसन का अल्पमत निर्णय व्याख्यात्मक था जिसमें हेतुक गठित होने वाले देश की विधि लागू होने का विचार व्यक्त किया गया था । यह कहने के पश्चात् कि सारभूत विषय हेतुक संबंधित विधि से शासित होने चाहिए कॉमन लॉ के इस आशय के मूल सिद्धान्त से नहीं कि परिसीमा विधियों के अन्तर्गत उपचार वर्जित है परन्तु अन्तर्निहित अधिकार निर्वापित नहीं होता है, मुख्य न्यायाधीश मैसन ने कहा है कि कॉमन लॉ के अन्तर की विशेषता का वर्णन कृत्रिम तथा शब्दार्थ विषयक के रूप में किया गया है । उन्होंने निम्नलिखित विचार व्यक्त किया है :

> "अन्तर की विशेषता को कृत्रिम तथा शब्दार्थ विषयक बताया गया है । चैशायर एण्ड नार्थ प्राईवेट इन्टरनेशनल लॉ, 11वां संस्करण (1987) पृष्ठ 215 ; साईक्स एण्ड प्रिल्स (आस्ट्रेलिया प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ, तीसरा संस्करण, 1991, पृष्ठ 258) जिसमें यह कहा गया है कि अन्तर सार्थक नहीं है । लीफलार का कहना है कि 'कोई अधिकार जिसके लिए विधिक उपचार वर्जित कर दिया जाता है, अधिकार ही नहीं रह

जाता है ' (लीफलार, मैकडोगल और पौलिक्स, अमरीकन कानफ्लिक्टस् लॉ, चौथा संस्करण, 1986, पृष्ठ 349) लारेनजन का भी विचार इसी प्रकार का है कि 'कोई अधिकार जिसे किसी विधिक अनुयोग द्वारा प्रवृत्त न किया जा सके वह अपने बहुमूल्य विशेष गुणों से ही वर्जित कर दिया जाता है' । (1919) 28 पाले जरलन, पैरा 492, पृष्ठ 496) ।"

मुख्य न्यायाधीश मैसन ने अमरीका की विधि का निर्देश किया जहां सुप्रीम कोर्ट ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि जो उपचार वर्जित हो गया है उसके साथ अन्तर्निहित अधिकार भी निर्वापित हो जाता है । हैरिसबर्ग (1886) 119 यू.एस. 199 (पृष्ठ 214) मामले में उसने कहा :

"समय, जिसके भीतर वाद लाया जाना चाहिए, सृजित दायित्व की परिसीमा के रूप में कार्यन्वित होता है, केवल उपचार की परिसीमा के रूप में ही नहीं । वाद लाए जाने के साथ यह शर्त रखी है ..... समय को अधिकार का सार तत्व बना दिया गया है, यदि समय का ध्यान नहीं रखा जाता तो अधिकार समाप्त हो जाता है । दायित्व और उपचार एक ही विधि से उत्पन्न होते हैं, इसलिए, उपचार की परिसीमा को अधिकार की परिसीमा भी समझी जानी चाहिए ।"

जहां विचारण करने वाले देश की विधि की ऐतिहासिक प्राथमिकता इस आवश्यकता पर आधारित थी कि न्यायाधीश देश की विधि के अनुसार, जहां अनुयोग संस्थित किया गया था, मामलों का निर्णय करने में समर्थ हो सकें क्योंकि उन्होंने उस देश की प्रक्रिया की जटिलताओं की तुलना में, जहां वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था, अपने देश की प्रक्रिया का अधिक ज्ञान था - यह सिद्धान्त बहुत व्यवहारिक है । यहां वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या किसी अन्य देश की परिसीमा विधि को प्रक्रियात्मक समझा जाए या उस पर ध्यान न दिया जाए । यह प्रश्न न्यायविदों तथा न्यायाधीशों के लिए महत्वपूर्ण बन गया है । मुख्य न्यायाधीश मैसन के अनुसार बहुत से मामलों को उनके विस्तृत अर्थ में प्रक्रियात्मक मानना इंग्लैण्ड का इतिहास रहा था और हमें उस समय की स्मृति है जब अन्तरराष्ट्रीय न्यायिक सौहार्द के महत्व को इतनी मान्यता नहीं दी गई थी जितनी कि आजकल उसे प्राप्त है और जब 'फोरम शॉपिंग' के सिद्धान्त को इतना

आपत्तिजनक व्यवहार नहीं समझा जाता था जैसाकि इसे आज समझा जाता है । उन्होंने बताया है कि डाइसी एण्ड मौरिस के कनफ्लिक्ट ऑफ लॉज, प्रथम संस्करण, (1890)(पृष्ठ 712) के विपरीत जहां प्रक्रिया शब्द को अपरिष्कृत अर्थ दिया गया था, ग्यारहवें संस्करण में (1987, खंड I, पृष्ठ 173) परिवर्तन दृष्टिगत होता है जहां यह स्वीकार किया गया है कि 'प्रक्रिया' शब्द को विस्तृत अर्थ देने का विरोध किया गया है क्योंकि इसमें विधिक नियमों के चुनाव के प्रयोजनों को पराजित करने की प्रवृत्ति निहित है । ब्रिटिश विधि आयोग ने प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ में परिसीमा का वर्गीकरण विषय पर अपनी 114वीं रिपोर्ट (1982) (पृष्ठ 6-11) में इस परिवर्तन को मान्यता दी है । इंग्लिश फारेन लिमिटेशन पीरियडस एक्ट, 1984 (यू.के.), प्रैसक्रिप्शन लिमिटेशन (स्कॉटलैण्ड) एक्ट, 1973 (स्कॅट.) की धारा 23क और संविदात्मक दायित्वों के लिए लागू होने वाली विधिक विषय में ई.ई.सी. कन्वेंशन के अनुच्छेद 10(1)(घ) द्वारा भी इसे मान्यता प्रादन की गई । नियम का आधार यह था कि नियमों का चुनाव अभिभावी होना चाहिए और इसे फोरम शॉपिंग द्वारा पराजित नहीं किया जाना चाहिए । पुराने दावों को रोकना होगा और प्रतिवादियों को ऐसी अनिश्चितता से छुटकारा दिलाना होगा कि ऐसे दावे उनके विरूद्ध फिर से लाए जा सकते हैं । अन्याय वहां हो सकता है जहां किसी मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय में जाने की परिसीमा अवधि हेतुक विधि द्वारा अनुमत्य विधि से अधिक है (वुल्फ, प्राइवेट इन्टरनेशलन लॉ, दूसरा संस्करण (1950) पृष्ठ 232-233 ; ब्रिटिश विधि आयोग(ओपी. सीआईटी, पृष्ठ 18) । मुख्य न्यायाधीश मैसन ने कहा है कि नुकसानी के शीर्षों, नुकसानी सीमित करने आदि से संबंधित बहुत से मामलों को आज तक मूल समझा जाता है प्रक्रियात्मक नहीं । सिद्धान्तों द्वारा प्रक्रियात्मक से मूल विधि में परिवर्तन का विस्तार किया जा रहा है । यह कहना यदि सही भी है कि परिसीमा विधि केवल उपचार की उपलब्धता या अन्यथा को प्रभावित करती है, मामले की परिस्थिति द्वारा ऐसा निर्देश नहीं होना चाहिए कि परिसीमा विधियों को प्रक्रियात्मक समझा जाए । उपचार के आधार पर दिए गए तर्क की फालकनब्रिज द्वारा अपने लेख 'एक्सेज ऑन कनफ्लिक्टिंग लॉज', (दूसरा संस्करण (1954)(पृष्ठ 308) ; में निम्नलिखित आलोचना की गई है :

> "सिद्धान्त रूप में यह समझ पाना कठिन है कि अनुयोग के अधिकार का वर्जन करने वाले विधि के किसी नियम का अर्थ प्रक्रियात्मक क्योंकर लगाया जाना चाहिए । यद्यपि,

अनुयोग के अधिकार को कभी-कभी उपचारात्मक स्वरूप का समझा जाता है, फिर भी प्रक्रिया की तुलना में उपचार की अवधारणा व्यापक है ।"

उपचार वर्जित होने और अधिकार निर्वापित होने के बीच के अन्तर मात्र के कारण परिसीमा विधि का वर्गीकरण प्रक्रियात्मक के रूप में नहीं किया जाना चाहिए । मुख्य न्यायाधीश मैसन ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है (कनफ्लिक्ट एण्ड लॉज, 7वां संस्करण) जिसमें विधिवेत्ता ने परिसीमा को प्रक्रिया का भाग स्वीकारने का पक्षधर होते हुए भी, बाल्डस् से सहमति व्यक्त की है कि परिसीमा या चिरभोग विधि हेतुक का निर्णय भी करती है । परन्तु वह उसके मूल गुणवगुण तक नहीं जाती है । इस तर्क में फोरम शॉपिंग की उपेक्षा की गई है । मुख्य न्यायाधीश मैसन ने कहा है :

"सार और प्रक्रिया को विभाजित करने वाली रेखा जो इस प्रकार के जोड-तोड में सहायक है, न्यायालयों द्वारा 'फोरम शॉपिंग' को रोकने के लिए विशेष सावधानी से किए गए संगठित प्रयासों से समानता नहीं रखती है ।"

मुख्य न्यायाधीश मैसन ने प्रो0 कुक के कथन का निर्देश किया है (सब्सऑस एण्ड प्रोसीजर इन कनफ्लिक्ट ऑफ लॉज) (1933) 42 याले जरनल 333 (पृष्ठ 333-344) कि सार और प्रक्रिया के बीच कोई विभाजन विद्यमान नहीं है जिसे केवल तर्क या विश्लेषण द्वारा खोजा जा सकेगा परन्तु यह अन्तर प्रश्न के उत्तर से बनाना होगा । "विचारण न्यायालय स्वयं को किसी बाधा या असुविधा में डाले बिना किसी विदेशी विधिक प्रणाली के नियमों को किस सीमा तक लागू कर सकता है ?" विद्वत न्यायाधीश ने कहा है कि परिसीमा विधियों के मामले में हेतुक विधि द्वारा विहित परिसीमा अवधि को प्रभावी बनाने में विचारण न्यायालय को कितनी असुविधा या बाधा आएगी उसका निश्चय कर पाना कठिन है । उन्होंने आगे कहा है कि "यदि कोई परिसीमा विधि हेतुक विधि का भाग है तो उसे 'मूल' विधि के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और विचारण न्यायालय को उसे हर स्थिति में लागू करना होगा" । इस प्रकार विदेशी परिसीमा अवधि या विदेशी मूल परिसीमा विधि को लागू करने में कोई असुविधा नहीं है । वास्तव में, इसी कारण से बहुत से न्यायविदों ने कहा है कि 'प्रक्रिया' शब्द को "मुकदमे की मशीनरी" या "मुकदमे का मैकेनिज्म" शब्दों द्वारा अधिक उपयुक्त रूप में परिभाषित किया गया है ।

मैककैन मामले में मुख्य न्यायाधीश मैसन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से हम पूरी तरह सहमत हैं ।

आस्ट्रेलिया में, क्वीन्सलैण्ड विधि सुधार आयोग ने अनुयोगों की परिसीमा अधिनियम, 1974 के पुनरीक्षण पर अपनी रिपोर्ट (रिपोर्ट सं0 52) (सितम्बर, 1998) (अध्याय -3) में यह कहने के पश्चात् कि कुछ देशों में परिसीमा विधियों को प्रक्रियात्मक समझा जाता है, मूल विधि के सिद्धान्त का निम्नलिखित रूप में निर्देश किया है :

"मूल"

परिसीमा संबंधी कतिपय उपबंध सामान्यतया, अधिकार को प्रवृत्त कराने के लिए कार्यवाही संस्थित करने हेतु परिसीमा अवधि का एक बार पर्यवसान हो जाने पर, जल्द ही उस अधिकार को निर्वापित करने के लिए लागू होते जिस पर कोई दावा आधारित होता है ।

इस आशय का विधान अधिनियमित करने का कारण यह है कि परिसीमा विधि का प्रयोजन विनिर्दिष्ट अवधि के पर्यवसान के पश्चात् दावेदार को मुकदमा संस्थित करने से रोकना है, विधान में इस आशय का उपबंध करना यथार्थवादी होने के साथ-साथ सैद्धान्तिक रूप से सही भी है कि परिसीमा अवधि का पर्यवसान हो जाने पर न केवल उपचार वर्जित हो जाता है अपितु अधिकार भी विद्यमान नहीं रहता (आन्तेरियो लॉ रिफार्म कमीशन, अनुयोगों की परिसीमा पर रिपोर्ट (1969) पृष्ठ 126- 127) । न्यायालय आदेशित समर्थन के बिना किसी दावे का बने रहने देना, किसी निर्णीत सम्पत्ति को बाद मे संयोगवश या कपटपूर्वक विवाद कारित करने के लिए खुला छोडना अवांच्छनीय समझा जाता है । (न्यू साऊथ वेल्स लॉ कमीशन, रिपोर्ट सं0 3, अनुयोगों की परिसीमा विषय पर रिपोर्ट, अक्टूबर, 1967, पैरा 14) ।

विधि नियमों के चयन के संबंध में, क्वीन्सलैण्ड कमीशन ने निम्नलिखित विधियों का निर्देश किया है जिनके अनुसार आस्ट्रेलियायी राज्य या राज्यक्षेत्र में किसी अनुयोग के विचारण

में अन्य देश की परिसीमा विधि लागू की जाएगी और उसे उस देश की मूल विधि का भाग समझा जाएगा जहां वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था :

(1) लिमिटेशन एक्ट, 1985 की धारा 5 (ए सी टी)

(2) चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस) एक्ट, 1963 की धारा 5 (एन एस डब्ल्यू)

(3) लिमिटेशन एक्ट, 1969 की धारा 78(2) (एन एस डब्ल्यू)

(4) चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1994 की धारा 5 (नार्दर्न टैरिटरी)

(5) चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1996 की धारा 5 (क्वीन्सलैण्ड)

(6) लिमिटेशन एक्ट, 1936 की धारा 38क (साऊथ आस्ट्रेलिया)

(7) लिमिटेशन एक्ट, 1974 की धारा 32ग (तस्मानिया)

(8) चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1993 की धारा 5 (विक्टोरिया)

(9) चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, 1994 की धारा 5 (वैस्टर्न आस्ट्रेलिया)

क्वीन्सलैण्ड विधि सुधार आयोग ने कहा है :

"अन्तराधिकारिता वाले विवादों में, विवाद को विनिश्चित करने वाला न्यायालय अपनी प्रक्रिया संबंधी विधि लागू करेगा परन्तु प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अनुसार विवाद को शासित करने वाली मूल विधि लागू करेगा । इसके परिणामस्वरूप

सक्षम रूप से लागू होने वाली परिसीमा विधि के वर्गीकरण से संबंधित मुकदमों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है ।

विधि नियमों के चयन के प्रश्न पर सभी आस्ट्रेलियायी अधिकारिताओं के सामूहिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है । प्रत्येक राज्य और राज्यक्षेत्र इस आशय का उपबंध करने वाला विधान अधिनियमित करने के लिए सहमत हुआ कि यदि किसी अन्य आस्ट्रेलियायी अधिकारिता की मूल विधि किसी न्यायालय की अधिनियमनकारी अधिकारिता के अधीन किसी दावे को शासित करती है तो उस अन्य अधिकारिता की परिसीमा विधि को उस अधिकारिता की मूल विधि समझी जाएगी और वह तद्नुसार लागू की जाएगी ।"

उदाहरणस्वरूप, हम चाइस ऑफ लॉ (लिमिटेशन पीरियडस्) एक्ट, (विक्टोरिया), 1993 के उपबंधों का निर्देश करेंगे :

" धारा 1 : उद्देश्य : इस अधिनियम का उद्देश्य विधि के चयन के प्रयोजन के लिए परिसीमा अवधि के बारे में उपबंध करना है ।

धारा 2 : प्रारम्भ : यह अधिनियम उस दिन से प्रभावी होगा जिस दिन इसे रॉयल अनुमति प्राप्त हो जाएगी ।

धारा 3 : परिभाषाएं :

इस अधिनियम में -

न्यायालय में मध्यस्थ भी है ;

परिसीमा विधि से वह विधि अभिप्रेत है जो किसी दायित्व की परिसीमा के लिए या किसी दावे के संबंध में ऐसे समय का निर्देश करते हुए जब किसी दावे के

बारे में कार्यवाही या माध्यस्थम प्रारम्भ हुआ अनुयोग के अधिकार के वर्जित होने का उपबंध करती है ।

धारा 4 : लागू होना : इस अधिनियम का विस्तार उस वाद हेतुक के लिए है जो इस धारा के प्रारम्भ होने से पूर्व उत्पन्न हुआ था परन्तु यह उस कार्यवाही के लिए लागू नहीं होगा जो इस धारा के प्रारम्भ से पूर्व संस्थित की गई थी ।

धारा 5 : परिसीमा विधियों का वर्गीकरण :

यदि किस अन्य स्थान की मूल विधि, किसी अन्य राज्य, राज्यक्षेत्र या न्यूजीलैण्ड से संबंधित है, इस राज्य के किसी न्यायालय में किसी दावे को शासित करती है तो उस स्थान की परिसीमा विधि मूल विधि का भाग समझी जाएगी और वह न्यायालय द्वारा तद्नुसार लागू की जाएगी ।

धारा 6 : परिसीमा विधि के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग :

यदि कोई न्यायालय, उसे किसी अन्य राज्य, राज्यक्षेत्र या न्यूजीलैण्ड की परिसीमा विधि के अधीन प्रदान किए गए किसी विवेकाधिकार का प्रयोग करता है तो वह विवेकाधिकार, यथासंभव व्यवहार्य रूप में, उस स्थान के न्यायालयों द्वारा तुलनीय मामलों में प्रयोग किया जाएगा ।"

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन आस्ट्रेलियायी विधियों में मुख्य न्यायाधीश मैसन के अल्पसंख्यक मत को स्वीकार किया गया है जिनमें मैकेन बनाम आर.डब्ल्यू मिलर एण्ड कम्पनी (साऊथ आस्ट्रेलिया) प्राइवेट लिमिटेड (1992) : 174 सी एल आर आई, मामले में मुख्य न्यायाधीश से सहमति व्यक्त की गई है ।

जहां चाइस ऑफ लॉ से भिन्न परिसीमा उपबंधों का संबंध है, क्वीन्सलैण्ड विधि आयोग ने अपनी 53वीं रिपोर्ट में (1998) में यह सिफारिश की है कि सांविधिक विधि में केवल सामान्य

विधि नियम परिलक्षित होने चाहिए और केवल उपचार को वर्जित किया जाना चाहिए अधिकार को निर्वापित नहीं किया जाना चाहिए ।

न्यूजीलैण्ड

न्यूजीलैण्ड में परिसीमा विधि को वर्ष 1996 से मूल विधि समझा जाता है । न्यूजीलैण्ड लिमिटेशन एक्ट, 1950 वर्ष 1996 में संशोधित किया गया और 'विदेशों की परिसीमा विधियों का लागू किया जाना' शीर्षक के अन्तर्गत भाग-2क जोडा गया जिसमें धारा 28क, धारा 28ख, धारा 28ग अन्तर्विष्ट हैं । हम नए भाग का भाग 2क में विस्तार से अध्ययन करेंगे । धारा 28क व्याख्या के बारे में है । इसमें कहा गया है कि इस भाग में (अर्थात् भाग 2क) देश शब्द में किसी देश का राज्य, राज्यक्षेत्र, प्रान्त या उस देश का भाग भी है । परिसीमा विधि को किसी विषय से संबंधित ऐसी विधि के रूप में परिभाषित किया गया है जो दायित्व को परिसीमित या वर्जित करती है या कार्यवाही संस्थित करने के अधिकार को या समय के संदर्भ में, जब मामले के संबंध में कार्यवाही या माध्यस्थम कार्यवाही आरम्भ की जाती हैं, मामले का माध्यस्थम द्वारा विनिश्चय किया जाना वर्जित करती है ; और इसमें वह विधि भी है जो यह उपबंध करती है कि मामले के बारे में कार्यवाहियां किसी अनिश्चित अवधि में प्रारम्भ की जा सकती हैं । धारा 28ख और धारा 28ग का पाठ निम्नलिखित है :

"धारा 28ख : अधिनियम के इस भाग का लागू होना

(1) अधिनियम का यह भाग कॉमनवैल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया या आस्ट्रेलिया के किसी भी राज्य या राज्यक्षेत्र के लिए यूनाइटेड किंग्डम या किसी अन्य देश के लिए, काउंसिल में आदेश द्वारा, जो इस धारा की उपधारा (2) के अधीन किया जाता है, लागू होता है ।

(2) गवर्नर जनरल, काउंसिल में ओदश द्वारा, समय-समय पर घोषणा कर सकेगा कि इस अधिनियम का यह भाग आदेश में विनिर्दिष्ट किए गए देश के लिए लागू होगा ।

(3) उस देश के मामले में जो किसी क्षेत्र के अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के लिए उत्तरदायी है, इस धारा की उपधारा (2) काउंसिल में पारित आदेश उस देश के लिए या सभी या उनमें से कुछ क्षेत्रों के लिए लागू हो सकेगा ।"

"धारा 28ग : परिसीमा विधि के लक्षण

(1) जहां उस देश की मूल विधि, जिसे अधिनियम का यह भाग लागू होता है, किसी न्यूजीलैण्ड के न्यायालय में या माध्यस्थम् में लागू की जानी है वहां उस देश की परिसीमा विधि उस देश की मूल विधि का भाग होगा और उसे तद्नुसार लागू किया जाएगा ।

(2) यदि, किसी ऐसे मामले में जिसे इस धारा की उपधारा (1) लागू होती है, कोई न्यूजीलैण्ड का न्यायालय या कोई मध्यस्थ किसी अन्य देश की परिसीमा विधि के अधीन स्वविवेकाधिकार का प्रयोग करता है तो वह स्वविवेकाधिकार, यथासंभव रूप में, इस प्रकार से प्रयोग किया जाना चाहिए जिस प्रकार से उसका प्रयोग उस अन्य देश में किया जाता है ।"

यह विधार, यू.के. और आस्ट्रेलिया के विधानों की ही तरह का है ।

कनाडा : टोलोफसन बनाम जेनसेन : (1994) (3)(एस सी आर 1022)

कनाडा के उच्चतम न्यायालय ने एक प्रमुख निर्णय में विधानमंडल द्वारा परिवर्तन किए जाने की प्रतीक्षा नही की । टोलोफसन बनाम जेनसेन : (1994) (3), एस सी आर 1022, मामले में न्यायालय ने किसी अन्य देश की परिसीमा विधि को मूल विधि का भाग समझे जाने का निदेश किया जिसके अनुसार वह न्यायालय जिसमें अनुयोग फाइल किया गया है, हेतुक गठित होने वाले देश की परिसीमा विधि को लागू करेगा ।

न्यायमूर्ति ला फॉरेस्ट ने कहा है कि मूल तथा प्रक्रिया संबंधी विधियों के बीच अन्तर निःसंदेह प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ में विद्यमान है । जबकि पक्षकारों के मूल अधिकार विदेशी विधि द्वारा शासित हो सकेंगे परन्तु प्रक्रिया से संबंधित सभी मामले अनन्य रूप से विचारण करने वाले देश की विधि के द्वारा ही शासित होंगे । महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि किसी मूल विधि और प्रक्रिया संबंधी विधि के बीच अन्तर किस प्रकार से किया जाए । विदेशी विधि को लागू करने में असुविधा का प्रश्न कब उठता है ? इंग्लैण्ड में वर्ष 1986 से परिसीमा विधियों को प्रक्रियात्मक मानने और अधिकार को जीवित रखते हुए उपचार को वर्जित करने वाले नियम के ऐतिहासिक उद्‌गम का निर्देश करने के पश्चात्, न्यायमूर्ति ला फॉरेस्ट ने कहा है कि यह दृष्टिकोण अस्पष्ट है । विद्वत न्यायमूर्ति ने कहा है :

> "इस प्रकार का तर्क एम.जोन माइकल जैसे महाद्वीपीय लेखकों के लिए अत्यन्त अस्पष्ट है (लॉ प्रैस्क्रिप्शन लिबराटोयर एन ड्राफ्ट इन्टरनेशनल प्राइव, थिसीस, यूनिवर्सिटी ऑफ पेरिस, 1911 पैराफ्रेन्ड इन एल्स् (1933) 31माइक एल रिव 474 या 494) जिसने कहा है कि यह अन्तर सत्यभाषी है जो परिसीमा अधिनियम के आशय की अपेक्षा भाषा पर निर्भर है ....." उपमहाद्वीपीय लेखकों के विचार में परिसीमा से संबंधित सभी विधियां सारभूत अधिकारों को विनष्ट करती हैं ।"

विद्वत न्यायाधीश ने महाद्वीपीय दृष्टिकोण की सराहना करते हुए कहा है कि कनाडा के न्यायालयों ने उस पेचीदगी को सुलझाना आरम्भ कर दिया है जो इस धारणा पर आधारित है कि परिसीमा विधियां उपचार को प्रभावित करती हैं अधिकार को नहीं । उसने कहा है कि इयू बान टियू बनाम केन्द्रान बास मारा : 1983 (1) ए सी 533 पी सी, पृष्ठ 563, मामले में लार्ड ब्राइटमैन के निर्णय में प्रिवी काउंसिल ने वास्तव में, यह स्वीकार किया था कि परिसीमा अवधि के पर्यावसान पर प्रतिवादी को निहित अधिकार प्राप्त हो जाता है यद्यपि वह अधिकार ऐसे अधिनियम के अधीन उत्पन्न होता है जो प्रक्रियात्मक है परन्तु यह कि प्रिवी काउंसिल "उसी पुराने इंग्लिश मत पर दृढ बनी रही कि परिसीमा विधियां प्रक्रियात्मक हैं । फिर भी मुझे यह दृष्टिकोण सारहीन प्रतीत होता है । ब्रिटिश संसद का भी विचार इसी प्रकार का था । आगामी वर्ष में विधान बनाकर नियम को परिवर्तित कर दिया गया । फॉरेन लिमिटेशन पीरियडस् एक्ट, 1984 (यू.के.) सी 16, में यह घोषित किया गया कि विदेशी परिसीमा अवधि सारभूत है ।"

तत्पश्चात, न्यायाधीश ला फॉरेस्ट ने घोषित किया कि विधान की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है । उसने कहा :

> "विधियों के बीच संघर्ष के मामलों में नियम को समाप्त करने के लिए मेरे विचार में विधान की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है । हमने देखा है कि इस मामले में संविदा वाले देश की विधि की तुलना में विचारण करने वाले देश की विधि को वरीयता देने के नियम के प्रमुख औचित्य को नकार दिया गया है । जहां तक अधिकार और उपचार के बीच तकनीकी अन्तर का संबंध है, कनाडा के न्यायालय सुसंगत नीति के विचार के आधार पर कुछ समय से इसका अपखंडन कर रहे हैं । मेरे विचार में इस न्यायालय को भी इसी प्रवृति को जारी रखना चाहिए । विधियों के बीच संघर्ष के मामले में जहां, जैसाकि मैंने पहले कहा है, मूल/प्रक्रियात्मक वर्गीकरण का उद्देश्य यह विनिश्चित करना है कि दोनों पक्षकारों के अधिकारों का विनिश्चय करने वाले नियमों से भिन्न किन नियमों के अनुसार न्यायालय तंत्र का कार्य सुचारू रूप से चल सकेगा ।"

क्लर्क बनाम नकवी, (1990) 99 एन बी आर (दूसरा) 271(सी ए), मामले में मुख्य न्यायाधीश स्ट्रैटन एन बी द्वारा आरम्भ की गई विचारधारा को उच्चतम न्यायालय ने अभिस्वीकृति प्रदान की जहां, न्यू बैन रियू (पीसी) का निर्देश करने के पश्चात् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था (पृष्ठ 275) कि नोवा स्काटिया की परिसीमा अवधि सारभूत थी और न्यू ब्रंसविक में एक वर्ष पश्चात् आरम्भ किया गया अनुयोग वर्जित था क्योंकि नोवा स्काटिया का नियम लागू होता था । न्यायमूर्ति ला फॉरेस्ट ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि यह विधि नहीं है तो न्यायालय को फोरम शॉपिंग को आमंत्रित करना पडेगा जिससे हमें बचा जाना चाहिए यदि हमें विधियों के बीच संघर्ष के बारे में किसी प्रभावी प्रणाली में परिणाम की स्थिरता प्राप्त करनी है ।

अमरीका

हम हैरिसबर्ग (1886)19 यू एस 199 (214), मामले में अमरीका उच्चतम न्यायालय के निर्णय का निर्देश ऊपर कर चुके हैं (देंखे, आस्ट्रेलिया के बारे में की गई उपर्युक्त चर्चा)

अमरीका की विधि के बारे में हम प्रो0 विलियम टैटली, क्यू सी (फेकल्टी ऑफ लॉ, मैकगिल यूनिवर्सिटी, मोंट्रीयल, क्यूबैक, कनाडा) के एक लेख का निर्देश करेंगे जिसने, वास्तव में, इस विषय पर बहुत से लेख लिखे हैं । कनाडावासी विधि के सिद्धान्त और व्यवहार के बारे में अमरीकी संघर्ष को विशिष्टतया अमरीकी विधिक और सामाजिक प्रणाली की दृष्टि से देखता है (1999) 38 कॉलम जे. ट्रांसनेशनल लॉ (299-373), उसने कहा है कि अमरीकी विधि अनिश्चित है और उसने निष्कर्षतः कहा है :

"तुलना करने पर हम पाते हैं कि कनाडा उच्चतम न्यायालय द्वारा टोलोफर बनाम जेनसन मामले निर्धारित किए गए कनाडा संघर्ष नियमों के अधीन कनाडा में उद्भूत हुए किसी ऐसे ही मामले का निर्णय करने में कनाडा का न्यायालय संविदा वाले देश की विधि को लागू करेगा जहां उस वाद्य के परिसीमा अवधि को भी ध्यान में रखेगा जहां अपकृत्य हुआ था, मामले का परिणाम चाहे जो भी निकले । इस प्रकार के दृष्टिकोण से वादी को सहायता नहीं मिलेगी अपितु अमरीकी संघर्ष के मामलों में अपनाई जाने वाली विधि की तुलना में विधि की निश्चितता को प्रोत्साहन मिलेगा । दूसरी ओर, दोषनिवारक न्याय को प्रभावी बनाने की आवश्यकता कनाडा में इतना आवश्यक विषय नहीं है जितना कि अमरीका में समझा जाता है क्योंकि कनाडा, अपनी सामाजिक सुरक्षा की सुदृढ प्रणाली में वितरणीय न्यायिक पद्धति दर्शाने वाले विधान के अधीन आहत पक्षकारों को क्षतिपूर्ति के अधिक अवसर प्रदान करता है ।"

उसने अन्त में कहा :

" वर्ष 1997 में अमरीकी विधि संघर्ष के बारे में जो कुछ महत्वपूर्ण हुआ उसमें नोट करने वाली बात यह है कि तीन अमरीकी राज्य उच्चतम न्यायालयों ने (मिशोगन, रहोड आइलैण्ड और वैस्ट वरजीनीया) इस परम्परागत स्थिति को छोड दिया कि परिसीमा विधियां प्रक्रियात्मक हैं । छह अन्य राज्यों ने (अरकानसास, कोलेरेडो, मोन्टाना, नार्थ डाकोटा, आरेगन और वाशिंगटन) ने यूनिफार्म कांफ्लिक्ट ऑफ लॉज लिमिटेशन एक्ट अधिनियमित कर लिया । अन्य आठ राज्यों ने भी हाल ही के वर्षों में अन्य विधान बनाकर या न्यायिक निर्णयों द्वारा ऐसा ही किया है ।"

दूसरे शब्दों में, वर्ष 1999 तक 17 राज्यों ने परिसीमा विधियों को प्रक्रियात्मक मानने से अपने को विलग कर लिया था । उपर्युक्त लेख में प्रो0 टैटली द्वारा निर्देशित राज्य उच्चतम न्यायालयों के निर्णय इस प्रकार हैं - सदरलैण्ड बनाम कैनिंगटन ट्रक सर्विसेज लिमिटेड : 562 एन डब्ल्यू II 466 एम सी 1997, मैकन्नी बनाम फेयर चाइल्ड इंक (487 एस ई II 913) (वैस्टवर), क्रिब बनाम आगस्टिन 496 ए II 285 (रोह I 1997) । अन्तिम आठ राज्य जिनका उसने निर्देश किया है इस प्रकार हैं - ऐरिजोना, कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा, इडाहो, लुईसियाना, मैसकैसट्स, नैब्रास्का और न्यूजर्सी । (एस साइमंडस् के लेख को उद्धृत करते हुए 'चॉइस ऑफ लॉ इन अमेरीकन कोर्टस् इन 1997, 46 ए एन जे, काम्प. एल 234, पृष्ठ 272-273')

यह महत्वपूर्ण घटनाक्रम हमें अमरीका के कई राज्यों द्वारा अधिनियमित किए गए यूनिफार्म कांफ्लिक्ट ऑफ लॉज लिमिटेशन एक्ट तैयार करने में यूनिफार्म स्टेट लॉज विषय पर नेशनल कांफ्रेंस ऑफ कमिश्नर्स द्वारा विकसित यूनिफार्म कांफ्लिक्ट ऑफ लॉज लिमिटेशन एक्ट, 1982 की ओर लाता है । अपने प्रस्तावना टिप्पण में उन्होंने कहा है :

> " परम्परागत रूप में विधि संघर्ष के प्रयोजनों से परिसीमा विधियों को प्रक्रिया संबंधी विधि के रूप में वर्गीकृत किया गया है ताकि विचारण करने वाले राज्यों की विधियों द्वारा विहित परिसीमा अवधि को प्रभावी बनाया जा सके । उसके इस आशय के अधिष्ठायी प्रभाव के बावजूद यह निष्कर्ष निकाला गया कि कौन पक्षकार मुकदमे में विजयी हुआ है । इसके परिणामस्वरूप विलम्बकारी वादियों या उनके अटार्नियों द्वारा लम्बी परिसीमा अवधि के साथ राज्यों में वाद दायर किए गए । "

इसका एक परिणाम यह हुआ कि न्यायालयों ने 'सामान्य नियम' के कतिपय अयथार्थवादी अपवाद विकसित किए । इनमें एक है जिसमें विधि में कथित, जैसे सदोष मृत्यु अधिनियम, किसी परिसीमा अवधि को 'सारभूत' समझा गया, जिससे मुकदमे का वाद हेतुक उत्पन्न हुआ ; दूसरा है 'विशिष्टता मापदण्ड' जो परिसीमा विधि को ऐसे मामले के लिए मूल विधि माना गया है यदि विधि, जिस दावे के लिए मुकदमा फाइल किया गया है, ऐसे मामले का विशिष्ट निदेश करती है । (देखें, ग्रेनमैन, स्टेटस् ऑफ

'लिमिटेशन एण्ड दी कांफ्लिक्ट ऑफ लॉज, माडर्न एनलेसिस, 1980 अरि जो स्टे एल जे I)

एक अन्य परिणाम यह हुआ कि लगभग तीन चौथाई राज्यों ने 'ग्रहीत विधिया' अधिनियमित की जिनमे यदि वाद हेतुक का कोई कथित कारण घटित हुआ था या वाद हेतुक किसी अन्य राज्य से संबंधित था तो, इन विधियों में किसी नियमित पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया अपितु विचारण वाले राज्यों से भिन्न परिसीमा अवधि लागू करने की अपेक्षा की गई थी । इन ग्रहीत विधियों की व्याख्या करना तथा इन्हें लागू करना कठिन कार्य था । ये पर्याप्त न्यायिक संभ्रम की स्थिति का स्रोत बनी हई हैं.....।"

यूनिफार्म कांफ्लिक्ट ऑफ लॉज लिमिटेशन एक्ट, 1982 में धारा 1 में परिभाषाएं दी गई हैं जबकि धारा 2 विधि संघर्ष, परिसीमा अवधि के बारे में है और उसका पाठ निम्नलिखित है :

"धारा 2 : (क) धारा 4 में उपबंधित के सिवाय, यदि कोई दावा मूलतः --

(1) किसी अन्य राज्य की विधि पर आधारित है तो उस राज्य की परिसीमा अवधि लागू होगी ; या

(2) किसी एक से अधिक राज्यों की विधियों पर आधारित है तो विधियों के संघर्ष संबंधी विधि द्वारा चयनित उनमें से किसी एक राज्य की परिसीमा अवधि लागू होगी ।

(ख) इस राज्य की परिसीमा अवधि अन्य सभी प्रकार के दावों के लिए लागू होगी ।"

धारा 3, परिसीमा अवधि की संगणना के लिए लागू होने वाले अन्य नियमों के बारे में है और उसका पाठ निम्नलिखित है :

"धारा 3 : यदि किया अन्य राज्य की परिसीमा विधि इस राज्य में दावे के प्राख्यान के लिए लागू होती है तो, परिसीमा अवधि की संगणना करने में उस अन्य राज्य की सुसंगत विधियां तथा शुल्क लगाने और दावे के प्रोद्भूत होने को शासित करने वाली विधि के अन्य नियम लागू होंगे परन्तु विधि संघर्ष को शासित करने वाली उस राज्य की विधियां तथा विधि के अन्य नियम लागू नहीं होंगे ।"

धारा 4, अनौचित्य का निर्देश करती है और इसका पाठ निम्नलिखित है :

"धारा 4 : यदि न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय किया जाता है कि धारा 2 और धारा 3, के अधीन लागू होने वाली किसी राज्य की परिसीमा अवधि इस राज्य की परिसीमा अवधि से पर्याप्त रूप से भिन्न है और उससे दावे के लिए वाद चलाने का पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हुआ है या दावे की प्रतिरक्षा में अनुचित भार थोपा गया है तो इस राज्य की परिसीमा अवधि लागू होगी ।"

धारा 5 वर्तमान और भावी दावों का निर्देश करती है और उसमें कहा गया है :

"धारा 5 : यह अधिनियम निम्नलिखित दावों के लिए लागू होता है :

(1) इस नियम के प्रभावी होनें की तिथि के पश्चात् प्रोद्भूत होने वाले दावे ; या

(2) इस अधिनियम के प्रभावी होने की तिथि से एक वर्ष से अधिक समय के पश्चात् किसी सिविल अनुयोग या कार्यवाही में जिन दावों का प्राख्यान किया गया है परन्तु इस अधिनियम के प्रभावी होने की तिथि से पूर्व वर्जित हुए दावे पुनःजीवित नहीं हो सकेंगे ।"

टिप्पण में आगे कहा गया है कि धारा 2 परिसीमा अवधि को मूल विषय मानती है जो राज्य की परिसीमा विधि से शासित होगी जिस राज्य की विधि से दावे में अन्तर्निहित अन्य मूल विषय शासित होते हैं । यह ठीक है मूल विषय को शासित करने वाली विधि की परिसीमा अवधि विचारण करने वाले राज्य की विधि की तुलना में बडी हो या छोटी । यह न्यायिक प्रवृत्ति पर आधरित है : हैवनर बनाम यूनीरॉयल इंक : 63 एन जे 130, 305ए 2डी 412 (1973) ; एयर प्रोडक्टस् एण्ड कैमिकल्स इंक बनाम फेयरबैंकस् मोरसे इंक : 58 विज 2डी 193 206 एन डब्ल्यू (2डी) 414 (1973) और हैनरी बनाम रिचर्डसन-मौरेल इंक : 508, एफ 2डी 28 (3डी सर्कि. 1975) । इन सभी मामलों में विचारण करने वाले राज्यों ने दूसरे राज्य की मूल विधि को लागू किया है चाहे उसके परिणामस्वरूप दूसरे राज्य की परिसीमा अवधि को भी लागू करना पडा है ।

धारा 3 में 'विधियों का शासी विरोध' शब्द 'कानूनों और विधि के नियमों' दोनों को लागू होते हैं । यह धारा सभी कराधेय और प्रोद्भूत उपबंधों को किसी राज्य की, जिसकी विधि को लागू किया जा सकता है, परिसीमा संबंधी विधि का मूल भाग समझती है । वे उस राज्य की विधि का भाग हैं, जिन्हें वह राज्य लागू करेगा । तथापि, किसी अन्य राज्य की परिसीमा अवधि, इसके ऐसे नियमों को सम्मिलित नहीं करती, जो इस बात से संबद्ध है कि कोई कार्रवाई कब आरम्भ की गई है, । ये नियम प्रत्येक फोरम राज्य की प्रक्रिया संबंधि विधि का भाग हैं । धारा 3 का अंतिम खंड बार-बार आने वाली समस्यों से बचने के लिए मानक उपायों को उल्लिखित करता है ।

धारा 4 एक 'उन्मुक्ति खंड' का उपबंध करती है, जो किसी न्यायालय को आत्यान्तिक मामलों में खुले-आम ऐसी कार्रवाई करने के लिए सशक्त करेगा, जिसे कभी-कभी विशिष्ट मामलों में अन्याय से बचने के लिए परोक्ष उपाय के रूप में किया जाता है । यह पर्याप्त अवधि से भिन्न है, जिसकी मूल विधि शासी है, भिन्नता अवश्य ही 'सारवान' होनी चाहिए और 'निष्पक्ष अवसर' से संबंधित उपबंध एक पृथक और अतिरिक्त अपेक्षा हे ।

वर्ष 2004 में, प्रोफेसर रॉबर्ट पुशा की अध्यक्षता वाली एक अध्ययन समिति ने 1982 के अधिनियम के संबंध में एक ज्ञापन प्रस्तुत किया था, जिसे नेशनल कॉन्फ्रेंस कमिशनर्स ऑन यूनिफोर्म स्टेट लॉज (एन सी सी यू एस एल) ने 1999 में वापिस ले लिया था ।

यह ज्ञापन इस तथ्य का उल्लेख करता है कि 1982 के अधिनियम के अधीन मूल विधि ऐसे राज्य की मूल विधि होगी जिसकी मूल विधि से विचाराधीन दावे शासित होते हों । किन्तु वर्ष 1988 में, अमरीकी विधि संस्थान ने उपर्युक्त धारणा को यह उपबंध करते हुए नामंजूर कर दिया था कि किसी राज्य की मूल विधि का अवधारण उस राज्य की विधि द्वारा परिसीमा के मुद्दे को अत्यधिक महत्व देते हुए करना चाहिए, किन्तु इस मुद्दे पर ध्यान न देते हुए राज्य की मूल विधि ऐसे विनिर्दिष्ट नियमों को नियंत्रित करती है और उन्हें विहित करती है, जो संभव्यता फोरम राज्य की मूल विधियों को तब तक लागू करने का समर्थन करते हैं, जब तक कि किसी अन्य राज्य की लघुतर सीमा अधिक उचित प्रतीत नहीं होगी ।

निष्कर्ष :

यह सिद्धांत सुस्थापित है कि कोई फोरम देश, फोरम देश की प्रक्रिया संबंधी विधि और हेतुक देश की मूल विधि को लागू करता है । जहां तक परिसीमा की विधि का संबंध है, उपर्युक्त चर्चा का परिणाम निम्नलिखित है ।

सिविल विधि वाले देशों में, परिसीमा की विधि को इस अर्थ में मूल विधि समझा जाता है कि परिसीमा की अवधि समाप्त होने पर न केवल न्यायिक उपचार वर्जित हो जाता है अपितु स्वयं अधिकार भी समाप्त हो जाता है । सामान्य विधि वाले देशों में (भारत सहित) अधिकार तो बना रहता है किन्तु न्यायिक उपचार वर्जित हो जाता है । राष्ट्र-पार समस्याओं से संबंधित ऐसे विशेष उपबंधों (जैसे कि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 11) के, जो विशेष नियमों द्वारा शासित होते थे, अधीन रहते हुए भारत में आज भी यही स्थिति कायम है ।

राष्ट्र-पार परिस्थितियों के मामले में, यदि किसी ऐसे फोरम देश में, जो सामन्य विधि प्रणाली का अनुसरण करता है, कार्रवाई संस्थित की जाती है तो सामान्य विधि वाले देश से बाहर कोई मामला सामने आने पर पूर्ववर्ती स्थिति यह थी कि फोरम देश की प्रक्रिया संबंधी

विधि लागू होती थी, जिसके अंतर्गत फोरम देश की परिसीमा विधि भी थी । इस संबंध में एकमात्र अपवाद, जिसका कथन पूर्व में उल्लिखित ह्यूबर बनाम स्टीनर : (1835) 2 बिंग (एन सी) 202 के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति टिंडल द्वारा किया गया था, यह था कि यदि ऐसे किसी देश में, जिसमें मामला उद्भूत हुआ था, विधि यह कहती है कि स्वयं अधिकार ही समाप्त हो गया था, तो फोरम देश तब भी कोई अनुतोष मंजूर नहीं करेगा यदि कार्रवाई फोरम देश में, फोरम देश की परिसीमा विधि द्वारा यथा विहित परिसीमा अवधि के भीतर फाइल की गई थी ।

जैसे-जैसे वाणिज्य का विकास हुआ और न्याय की नई-नई धारणाएं विकसित हुई, वैसे-वैसे यह सिद्धांत कि न्यायालयों को 'फोरम शापिंग' की अनुज्ञा नहीं देनी चाहिए, अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता गया और कुछ सामान्य विधि के न्यायालयों ने न्यायिक निर्णय के विषय के रूप में, जैसे कि कनाडा के और यूएसए के कुछ न्यायालयों ने उस देश की, जिसमें मामला उद्भूत हुआ था, विधि को मूल विधि के रूप में मानना और उसे फोरम देश में लागू करना आरम्भ कर दिया । यदि उस देश में, जिसमें मामला उद्भूत हुआ था, अवधि संक्षिप्त थी तो मूल विधि की दशा में अधिकार समाप्त हो जाएगा और वह पक्षकार किसी ऐसे अन्य देश में, जिसमें परिसीमा की अवधि अधिक है, कार्रवाई संस्थित नहीं कर सकता । उल्लेखनीय रूप से, जब निर्णयजन्य विधि इस दिशा में अग्रसर हुई तो, उस देश की जिसमें मामला उद्भूत हुआ था, परिसीमा अवधि को, यदि वह फोरम देश की परिसीमा अवधि से अधिक हो तो भी अनिवार्य रूप से लागू किया जाता था ।

न्यायालयों द्वारा विधि को परिवर्तित करने का कारण यह था कि वे 'फोरम शापिंग' को रोकना चाहते थे । दूसरा कारण 'अनिश्चितता' को समाप्त करना था । तीसरा कारण यह था कि किसी अन्य राज्य की विधि को लागू करने में कोई 'असुविधा' नहीं थी । चौथा कारण यह था कि आधुनिक समय में देशों के बीच शिष्टाचार के सिद्धान्त को अधिक मान्यता दी जाती है ।

ऐसे राज्यों या देशों में, जहां निर्णयजन्य विधि में कनाडा और यूएस राज्यों के समान, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, विकास नहीं हुआ है, वहां विधानमंडल ने ऐसी विधियां बनाई, जो उस देश की, जिसमें मामला उद्भूत हुआ था, परिसीमा विधि को मूल विधि के रूप में मानती थी और इस प्रकार फोरम देश के न्यायालय, उस देश की, जिसमें मामला उद्भूत

हुआ था, परिसीमा विधि को लागू करने के लिए मजबूर थे । 1984 का इंग्लिश अधिनियम और आस्ट्रेलिया में राज्यों के विभिन्न अधिनियम न्यूजीलैण्ड अधिनियम के संशोधन और विधियों के समान विरोधाभास को अपनाने वाले यू एस के राज्यों के कुछ कानून, परिसीमा अधिनियम, 1982 इसके कुछ उदाहरण हैं ।

इस पृष्ठभूमि में हम अगले अध्याय में भारत में विद्यमान विधि की स्थिति पर चर्चा करेंगे ।

अध्याय-चार

भारतीय परिसीमा विधि की समस्याएं और परिवर्तन करने के लिए सिफारिशें

विदेशी परिसीमा विधि और उसके लागू होने का विषय परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 11 में दिया गया है । 1963 का अधिनियम अधिनियमित किए जाने से पूर्व, यह विषय परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 11 में भी अन्तर्विष्ट था । 1908 के अधिनियम के उपबंध केवल विदेशी संविदा का निर्देश करते हैं जबकि 1963 के अधिनियम में विदेश में या जम्मू और कश्मीर में की गई संविदाओं का निर्देश किया गया है । अन्यथा, निष्कर्षतः, इन दोनो नियमों में और कोई अन्तर नहीं है । वास्तव में, विधि आयोग की तीसरी रिपोर्ट (1956) में जिसके आधार पर 1963 का अधिनियम अधिनियमित किया गया था, संक्षेप में यह कहा गया है कि धारा 11 में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है ।

क्योंकि हम धारा 11 के बारे में विस्तार से चर्चा कर रहे हैं, इसलिए इसे हम एक बार फिर से उद्धृत करेंगे ।

"धारा 11. जिन राज्यक्षेत्रों पर इस अधिनियम का विस्तार है उसके बाहर की गई संविदाओं के आधार पर वाद :

(1) जम्मू-कश्मीर राज्य या विदेश में की गई संविदाओं के आधार पर उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, संस्थित किए गए वाद इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट परिसीमा विषयक नियमों के अध्यधीन होंगे ।

(2) जम्मू-कश्मीर राज्य या किसी विदेश में प्रवृत्त परिसीमा विषयक कोई भी नियम या उस राज्य या विदेश में की गई किसी संविदा पर आधारित

वाद में, जो उक्त राज्यक्षेत्रों में संस्थित किया गया हो, तब के सिवाय प्रतिरक्षा न होगा जबकि -

(क) उस नियम ने उस संविदा को निर्वापित कर दिया हो ; और

(ख) पक्षकार ऐसे नियम द्वारा विहित अवधि के दौरान उस राज्य या विदेश के अधिवासी थे ।"

यह देखा जा सकेगा कि धारा 11 भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबंधो को उन मामलों में लागू किए जाने की अपेक्षा करता है जहां विदेश या जम्मू-कश्मीर राज्य में की गई किसी संविदा पर वाद हेतुक के संबंध मे वाद भारत में संस्थित किया गया है । उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट एकमात्र अपवाद यह है कि विदेशी विधि केवल तभी लागू होगी जब उसने संविदा को निर्वापित कर दिया हो और दूसरी शर्त यह है कि विदेशी विधि द्वारा विहित अवधि के दौरान पक्षकार विदेश के अधिवासी थे ।

1908 के पुराने परिसीमा अधिनियम के बारे में यू.एन. मित्रा द्वारा 1949 में की गई तथा प्रो0 एस वेंकटराम द्वारा सम्पादित की गई कामेंट्री में कहा गया है कि धारा 11 इंग्लिश मामलों में निर्धारित किए गए सिद्धान्तों पर आधारित है । इग्लिश विधि के अनुसार, अधिकारों से यथा भिन्न उपचारात्मक कार्यवाही उस स्थान की विधि के अनुसार की जाएगी जहां अनुयोग संस्थित किया जाता है । (डर्बी एण्ड बोसानक्वैट, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 15, 58,59) । इस नियम का कारण ह्यूबर बनाम स्टेनर (1835) 2 बिंग (एन सी) 202 मामले में बताया गया है और जिसका निर्देश अध्याय-एक में किया गया है । उस निर्णय को प्रिवी कौंसिल की अनुमति से रूक्काबॉय बनाम लुल्लुभाई मोती चन्द, (1835) 5 मूरेज इन्ड एप्प 234 (268), मामले में उद्धृत किया गया था जिसमें निम्नलिखित कहा गया था : "प्रत्येक देश अपनी सुविधा के लिए न्यायालयों की स्थापना करता है ,उन न्यायालयों में उपलब्ध उपचार, समय और उसमें कार्यवाही पद्धति उसे देश के अपने विचार में जो न्यायोचित, उचित और आवश्यक है, के अनुसार विनियमित की जाती है और उसे उसकी राय में जो न्यायोचित और उचित तथा आवश्यक है उससे देशों के किसी सौहार्द के कारण से विलग होने के लिए (प्रक्रिया के मामले में) बाध्य नहीं किया जा

सकता" । राष्ट्रमंडलीय देशों में इंग्लिश विधि की पूर्वकालिक स्थिति पर आधारित धारा 11 में अन्तर्विष्ट सिद्धान्तों में, जैसाकि पिछले अध्यायों में बताया गया है, सिविल लॉ वाले देशों में विधिके समान कॉमन लॉ वाले देशों में विधि लाने से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं जिससे किसी विदेश की परिसीमा विधि मूल विधि मानी जाती है और इसका परिणाम न केवल न्यायिक उपचार अपितु अधिकार का भी निर्वापन है और ऐसी विधि फोरम देशों के द्वारा परिसीमा विधि की तुलना में वरीयता प्रदान करके लागू किया जाएगा जो सिवाय राष्ट्र-पार मामलों के प्रक्रियात्मक होगी ।

1908 तथा 1963 के दोनों ही अधिनियमों की धारा 11 की उपधारा (2) के प्रारूपण में एक महत्वपूर्ण त्रुटि का उल्लेख करना अपेक्षित है । जैसाकि स्टॉक्स द्वारा अपनी आंग्ल-भारतीय संहिता में (खंड 2, पृष्ठ 965) कहा गया है कि 'संविदा को निर्वापित कर दिया हो' शब्दों से वास्तव में संविदा से उत्पन्न होने वाला अधिकार का निर्वापित हो जाना अभिप्रेत है । प्रो0 एस वेंकटरामन ने यू.एन. मित्रा की कामेंटरी (7वां संस्करण, 1949, पृष्ठ 131)सम्पादित करते हुए स्टोक्स को उद्धृत किया है और रूस्तमजी ने भी अपनी कामेंटरी में ऐसा ही कहा है (7वां संस्करण, एस.पी. सेनगुप्ता द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 28, पृष्ठ 955 खंड 2 पर स्टोक्स को उद्धृत करते हुए) ।

जहां तक 1908 और 1963 के अधिनियमों की धारा 11(2) के खंड (क) और खंड(ख) में दिए गए अपवादों का संबंध है, प्रो0 वेंकटरामन ने यह बताया है कि यह अपवाद स्टोरी के कानफ्लिक्ट ऑफ लॉज की धारा 582 से लिया गया है जहां अब धारा 11(2) दोनों शर्तें उल्लिखित की गई बताई गई थी ।

हम पिछले अध्यायों में ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में विधि में किए गए परिवर्तनों का पहले ही निर्देश कर चुके हैं और हम कहीं भी धारा 11(2)(ख) में दी गई यह शर्त कि "और पक्षकार ऐसे नियम द्वारा विहित अवधि के दौरान उस राज्य या विदेश के अधिवासी थे ", नहीं पाते हैं ।

परिसीमा अधिनियम, 1963 पर अपनी कामेंटरी (छटा संस्करण 1991), पृष्ठ 280 पर, में श्री वी. आर. मनोहर और डब्ल्यू. डब्ल्यू चैटली ने सही रूप में यह बताया है कि धारा 11(2)(ख) की यह शर्त वर्तमान समय में उपयुक्त नहीं है और इसे हटाया जाना अपेक्षित है । लेखकों ने कहा है :

> "इसके अतिरिक्त, किसी विदेशी राज्य में, परिसीमा की विदेशी अवधि पर आधारित प्रतिरक्षा की उपलब्धता की आवश्यकता पूर्वापेक्षा के रूप में विदेशी राज्य में पक्षकारों के अधिवास [धारा 11(2)(ख)] पर जोर देना, इस प्रस्तुतिकरण में, हमारे समय की, जिसमें संचार और परिवहन के साधनों में विकास के साथ अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में बेहताशा वृद्धि हुई है, समकालीन वास्तविकताओं के साथ संगत प्रतीत नहीं होती है । इसके अतिरिक्त, अधिवास के दावे को, शुद्ध वाणिज्यिक प्रकृति की किसी संविदा को (विधि के) लागू होन के संबंध में अभिनिश्चय करने के लिए संबद्ध तथ्य के रूप में उपयोग करना कुछ अधिक उचित नहीं जान पडता । यह आशा की जाती है कि जब विधि का पुनरीक्षण किया जाएगा, तब इस तथ्य पर और पूर्व में चर्चा किए गए अन्य पहलुओं पर सम्यक् ध्यान दिया जाएगा ।"

हम इस बात से सहमत हैं कि लेखकों द्वारा बताए गए कारणों से धारा 11(2)(ख) की शर्त को हटा दिया जाना चाहिए ।

मुथुकन्नी बनाम अंदप्पा (ए आई आर 1955 मद्रास 96) मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण खंडपीठ के निर्णय में 1908 के अधिनियम की धारा 11 पर विचार किया गया था । निःसंदेह रूप से, यह उस अधिनियम की धारा 13 से भी संबंधित था, जो 1963 के अधिनियम की धारा 15(5) के तत्समान हे । पुराने अधिनियम की धारा 13 में कहा गया था कि "किसी वाद के लिए परिसीमा की अवधि की संगणना करते समय ऐसे समय को गणना में नहीं लिया जाएगा जिसके दौरान प्रतिवादी भारत के राज्यों और भारत के राज्यों से परे केन्द्रीय सरकार के प्रशासन के अधीन के राज्यक्षेत्रों से अनुपस्थित था "। धारा 11 के अधीन विधि पर विचार विमर्श

करते समय मुख्य न्यायमूर्ति राजामन्नार ने साधारण सिद्धान्त के संबंध में निम्नानुसार निर्देश किया है :

"यह साधारण सिद्धान्त भी सुस्थापित है कि ऐसी कार्रवाईयों के संबंध में प्रक्रिया के सभी विषय उस विचारण करने वाले देश की विधि द्वारा शासित होते हैं जिसमें कार्रवाई आरम्भ की जाती है । परिसीमा संबंधी कानूनों को, जब तक कि वे वादी के उपचार पर पाबंदी लगाए जाने के रूप में स्थावर संपत्ति को प्रभावित न करें, सदा प्रक्रिया संबंधी कानून माना जाता है । इसलिए, ऐसे देश में, जिसमें कार्रवाई आरम्भ की जाती है, प्रवृत्त परिसीमा संबंधी कानून लागू होंगे न कि वे परिसीमा संबंधी कानून जो ऐसे स्थान पर प्रवृत्त हों, जहां कार्रवाई हेतुक उद्भूत हुआ था या संविदा की गई थी । तथापि, इस साधारण नियम का एक अपवाद भी है, अर्थात् जहां किसी ऐसे संव्यवहार को, जिसके संबंध में कार्रवाई आरम्भ की गई है, शासित करने वाली उचित विधि द्वारा, उस देश में, जहां कार्रवाई हेतुक उद्भूत हुआ था या संविदा की गई थी, प्रवृत्त परिसीमा संबंधी कानून न केवल उपचार पर पाबंदी लगता है अपितु उस अधिकार को भी समाप्त करता है, वहां उस देश में, जहां वाद संस्थित किया जाता है, परिसीमा संबंधी नियम लागू नहीं होते हैं । (हेल्सबरीज लॉ ऑफ इंग्लैण्ड, जिल्द 6, पृष्ठ 355)"

ह्यूबर बनाम स्टीनर (1835) 2 बिंग एनसी 202 और रकमाबोए बनाम लुल्लाभोए मोतीचन्द (1951-54) 5 मूरज़ इंडि एपीपी 234 मामलों का संदर्भ भी लिया गया था । मद्रास उच्च न्यायालय ने भी धारा 11(2)(ख) का निर्देश किया है ।

डिर्का एण्ड कं0 बनाम म्युनिसिपल बोर्ड (ए आई आर 1956 कलकत्ता 216 से 219) मामले में न्यायमूर्ति बछावत ने भी साधारण सिद्धान्त को निम्नलिखित रूप में बताया था :

"यह सुस्थापित है कि विधि का ऐसा भाग जो केवल उपचार और प्रक्रिया को प्रभावित करता है, उस देश की, जिसमें कार्रवाई आरम्भ की जाती है, विधि द्वारा शासित होता है न कि किसी विदेशी विधि द्वारा । न्यायालय परिसीमा संबंधी ऐसी किसी विदेशी विधि को लागू नहीं करेगा जो केवल उपचार को प्रभावित करती है और इसलिए, केवल प्रक्रिया

संबंधी विषय है । परिसीमा संबंधी विदेशी विधि को वहां लागू किया जाएगा जहां वह अधिकार को समाप्त करती है या इस प्रकार हक का सृजन करती है, जिससे कि यह मात्र प्रक्रिया संबंधी विषय नहीं रह जाता है ।

अधिनियम की धारा 11 इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है ।"

यह देखा जाएगा कि धारा 11 केवल विदेशी संविदाओं को लागू होती है । किन्तु इस सिद्धान्त को, विदेश में, जिनके संबंध में भारत में वाद फाइल किए गए हैं, उद्भूत होने वाले उन सभी दायित्वों या मूल अधिकारों पर विस्तारित किया जाना चाहिए । प्रो0 वेंकटरमन कहते हैं कि डा0 स्टोक्स ने अपने एंग्लो-इन्डियन कोडस्, जिल्द - 2, पृष्ठ 950 पर यह सुझा दिया था कि धारा 11 को अभिव्यक्त रूप से सभी बाध्यताओं पर विस्तारित किया जाना चाहिए । उस दशा में जहां किसी विदेशी परिसीमा विधि द्वारा केवल उपचार पर पाबंदी है, वहां भारत में कोई वाद संस्थित किया जा सकता है परन्तु कोई भारतीय विधि उस पर पाबंदी न लगाती हो (नल्ला थम्बी बनाम पोन्नुस्वामी (1879) आई एल आर 2 मद्रास 400, हैरिस बनाम क्वीन (1869) एल आर 4 क्यू बी 653) । यह परिवर्तन करने के पश्चात् भी यही स्थिति होगी अर्थात् अवधि के संबंध में कोई विदेशी परिसीमा विधि भारत में लागू होगी ।

किन्तु किसी किसी विदेशी परिसीमा विधि को लागू करने के विषय में एक अन्य पहलु भी है, जिसका हमें उल्लेख करना होगा । यह देखा जाएगा कि आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और ब्रिटेन की विधियों में यह कहा गया है कि किसी विदेशी परिसीमा विधि को लागू करने में अपने विवेक का प्रयोग करते हुए देश की विधि लागू होगी । उदाहरणार्थ, 1963 के भारतीय अधिनियम में धारा 4 से 24 तक में से कुछ में ऐसा उपबंध है जिसके कारण न्यायालय कतिपय अवधियों को अपवर्जित करने का आदेश पारित कर सकते हैं - उदाहरण के लिए धारा 14 देखिए, जिसमें किसी गलत न्यायालय में वाद फाइल करने में लगी अवधि को तब अपवर्जित करना होगा यदि उस न्यायालय में सद्भाव और नेकनियत के साथ वाद फाइल किया गया था । हमारे पास ऐसे उपबंध भी हैं जिनमें अव्यस्कों को समय की विस्तारित अवधि प्रदान की जाती है । धारा 12, निर्णयों आदि की प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने में लगे समय के अपवर्जन के संबंध में है ।

हम विदेशी विधि के ऐसे नियमों को लागू करने के पक्ष में नहीं है जो भारतीय विधि की धारा 4 से धारा 24 के तत्समान हे । यह भारतीय न्यायालयों को, अनेक देशों की परिसीमा विधि के विभिन्न उपबंधों और प्रक्रिया की पहचान करने के लिए मजबूर करना होगा । अतः हम यह सिफारिश करते हैं कि कोई विदेशी विधि, उस विधि में ऐसी किसी घोषणा के साथ ही लागू होती है कि यह एक मूल अधिकार है या यह अधिकार समाप्त हो जाता है अथवा समाप्त नहीं होता है । विदेशी अवधि, चाहे वह कम हो आवा अधिक लागू होती है । किन्तु यदि धारा 4 से धारा 24 के तत्समान कोई प्रश्न उद्भूत होता है तो भारतीय अधिनियम की धारा 4 से धारा 24 तक के उपबंध लागू होते हैं ।

जहां तक विदेशी डिक्रियों के निष्पादन का संबंध है, धारा 11 अभिव्यकत रूप से इस पहलु के संबंध में उल्लेख नहीं करती थी किन्तु न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वे सिद्धान्त, जो वादों को लागू होते हैं, निष्पादन कार्यवाहियों को भी लागू होने चाहिए, अर्थात् भारतीय प्रक्रिया संबंधी विधि, भारतीय परिसीमा अधिनियम सहित लागू होगी । ऊपर निर्दिष्ट डिकी एण्ड कं0 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कहा था कि "तथापि, परिसीमा अधिनियम की धारा 11 संपूर्ण नहीं है । इसलिए, नबीभाटी वज़ीरभाई बनाम दयाभाई अमुलुख, ए आई आर 1916 बम्बई पृ.200 मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बडोदा मूल राज्य द्वारा पारित डिक्री भारत में निष्पादित नहीं किया जा सकता था क्योंकि यद्यपि निष्पादन के आवेदन पर बडोदा राज्य की परिसीमा विधि द्वारा स्पष्ट पाबंदी नहीं थी, फिर भी ऐसे आवेदन पर भारतीय परिसीमा विधि के द्वारा पाबंदी थी ।"

किन्तु इस प्रकार का सिद्धान्त श्रीनिवास बनाम नरायण : ए आई आर 1923 मद्रास 72 और हुकमचन्द असवाल बनाम ज्ञानेन्द्र : (1887) आई एल आर 6 कलकत्ता 570 मामलों में अधिकथित किया गया था । इन मामलों में यह अधिकथित किया गया था कि किसी भारतीय न्यायालय को निष्पादन के लिए अन्तरित किसी डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा विधि वह विधि है जो पश्चातवर्ती न्यायालय द्वारा लागू की जाती है ।

किन्तु विधान मंडल अभिव्यक्त रूप से यह अधिनियमित कर सकता है कि यद्यपि परिसीमा संबंधी किसी विदेशी नियम ने मूल अधिकार समाप्त नहीं किया है तो भी वह विशिष्ट

वादों को लागू होगा । उदाहरण के लिए, झांसी के संतांतरण से संबंधित 1886 के अधिनियम 12 की धारा 8 देखें । (प्रो. वेंकटरमन, यू एन मित्रास कॉमेंटरी में यथोक्त पृष्ठ 132) ।

जहां तक विदेशी डिक्रियों के निष्पादन का संबंध है, परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची में कोई विनिर्दिष्ट अनुच्छेद न होने के कारण बहुत से निर्णयों में विरोधाभास है । मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने शैक अली बनाम शैक मोहम्मद : ए आई आर 1967 मद्रास 45 (एफ बी) मामले में यह राय दी थी कि अनुच्छेद 182 केवल भारतीय न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियों के निष्पादन को ही लागू होता है और यह कि इस प्रकार शेष मामलों को अनुच्छेद 181 लागू होती है । न्यायपीठ ने यह और अभिनिर्धारित किया कि तीसरे कॉलम के अधीन समय उस तारीख से आरम्भ होता है जिसको आवेदन करने का अधिकार प्रोद्भूत होता है और न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि समय उस तारीख से आरम्भ होता है जिसको विदेशी डिक्री की प्रमाणित प्रति भारत में जिला न्यायालय में फाइल की जाती है । तथापि, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने लखपत राय शर्मा बनाम आत्मा सिंह : ए आई आर 1971 पंजाब और हरियाणा 476 मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 182, जो डिक्री के निष्पादन को लागू होता है, विदेशी डिक्रियों के निष्पादन को भी लागू होता है ।

इन विषयों के संबंध में अनिश्चितता बनाए रखने के बजाय हमारा विचार यह है कि कतिपय उपबंधों को बनाया जाना अपेक्षित है । प्रथमतः कोई विदेशी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अधीन 'व्यतिकारी देश' होना चाहिए । केवल तभी कोई विदेशी डिक्री भारत में निष्पादनीय है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क जम्मू और कश्मीर राज्य में पारित डिक्रियों को लागू नहीं होती है । उस राज्य में पारित डिक्रियों को धारा 43 के अनुसार भारत के अन्य भागों में निष्पादित किया जा सकता है । अब तक 1963 के अधिनियम के अधीन, परिसीमा विधि प्रक्रियात्मक होने के कारण विदेशी न्यायालयों की डिक्रियों के निष्पादन के संबंध में भारतीय अधिनियम लागू किया जाता था, केवल इस बात पर विरोध था कि 1908 के अधिनियम का अनुच्छेद 181 लागू होगा या 182 (अब 1963 के अधिनियम की धारा 137, 136) । चूंकि अब हम नई धारा 11 के अधीन यह प्रस्ताव कर रहे हैं कि परिसीमा की विदेशी अवधि वादों को लागू होगी, इसलिए, यह सिद्धान्त विदेशी डिक्रियों के निष्पादन के संबंध में प्रस्तावित संशोधनों में भी प्रतिपादित होना चाहिए । यह यथा प्रस्तावित धारा 11 में प्रतिपादित होता है ।

हमने इस प्रश्न की समीक्षा की है कि क्या किसी देशी डिक्री के निष्पादन के लिए किसी विदेशी विधि में यथाविहित किसी अवधि लागू होनी चाहिए या किसी विदेशी डिक्री के निष्पादन के लिए किसी विदेशी विधि में यथाविहित अवधि लागू होनी चाहिए । यह संभव है कि कुछ देशों में, जैसे कि हमारे देश में, विदेशी डिक्रियों के निष्पादन से संबंधित कोई विनिर्दिष्ट अनुच्छेद नहीं है । अनिश्चितता को दूर करने के लिए, हमारा विचार यह है कि किसी विदेशी डिक्री के भारतीय न्यायालयों में निष्पादन के लिए अवधि वह होनी चाहिए जो विदेश में उसकी देशी डिक्रियों के निष्पादन के लिए नियत है । और अब जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के अधीन उसकी प्रति भारतीय जिला न्यायालय में फाइल की जाएगी, हमारे विचार में उस तारीख से आरम्भ होनी चाहिए जिसको किसी विदेशी डिक्री की प्रमाणित प्रति यहां फाइल की जाती है । चूंकि प्रस्तावित धारा 11क लागू होती है, प्रस्तावित धारा 11 में कथित सिद्धान्त लागू होंगे । चूंकि यथा प्रस्तावित धारा 11(2) में "इस अधिनियम के उपबंध के अधीन रहते हुए" शब्दों का प्रयोग किया गया है, इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रस्तावित अनुच्छेद 136 के प्रयोजनों के लिए इस अधिनियम की धारा 4 से धारा 24 भी लागू होनी चाहिए । नई धारा 11क के लिए निम्नलिखित उपबंधों का प्रस्ताव किया गया है ।

प्रस्तावित धारा 11क भारत के ऐसे न्यायालयों में, जिनको यह अधिनियम विस्तारित होता है, ऐसे विदेशों में पारित डिक्रियों से संबद्ध होगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण में कथन किए गए अनुसार "व्यतिकारी देश" हैं । (धारा 11क जम्मू और कश्मीर में न्यायालयों द्वारा पारित डिक्रियों के भारत के अन्य भागों में न्यायालयों में निष्पादन से संबंधित नहीं है क्योंकि न्यायिक निर्णयों द्वारा यह तथ्य सुस्थापित है कि सी पी सी की धारा 43 लागू होती है) । प्रस्तावित धारा 11क को देखते हुए, व्यतिकारी विदेशों में पारित ऐसी डिक्रियों के, जिनको ऐसे न्यायालयों में, जिन्हें अधिनियम विस्तारित होता है, निष्पादित करने की वांछा की जाती है, संबंध में धारा 11 में कथित परिसीमा का सिद्धान्त लागू होगा, अर्थात् उक्त विदेश की परिसीमा विधि में कथित की जाने वाली परिसीमा अवधि और अधिकारों के समाप्त होने का सिद्धान्त इसके अतिरिक्त ऊपर बताए गए अनुसार ऐसे भारतीय न्यायालयों में निष्पादन के लिए लागू विदेशी विधि की। परिसीमा अवधि वह होगी जो विदेशी विधि द्वारा उसके देशी न्यायालयें द्वारा पारित डिक्रियों के निष्पादन के लिए विहित की गई है । वह अवधि उस तारीख से प्रारम्भ होगी जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क में

यथा कथित भारतीय न्यायालय में विदेशी न्यायालय की डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल की जाती है । धारा 11क द्वारा प्रस्तावित धारा 11 के सिद्धान्त प्रतिपादित करने के कारण, धारा 4 से धारा 24 तक के उपबंध भारत में निष्पादन के लिए फाइल किए गए ऐसे आवेदनों को भी लागू होंगे ।

भावी प्रवर्तन

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि धारा 11 और धारा 11क तथा अनुच्छेद 136क के उपबंध केवल प्रस्तावित संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् उद्भूत होने वाले वाद हेतुकों के संबंध में लागू होंगे । अतः नए प्रस्ताव, लंबित कार्यवाहियों या यहां तक कि उन वाद हेतुकों को लागू नहीं होंगे जो संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व पहले ही से उद्भूत हो गए है ।

सिफारिशों का सारांश निम्नलिखित है :

(1) 1963 के अधिनियम की धारा 11 का उपबंध विदेश में की गई संविदा को सीमित करता है किन्तु उसका विस्तार अपकृत्य आदि जैसे अन्य मामलों तक नहीं है । जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, प्रस्तावित धारा विदेश में उद्भूत होने वाले किसी अन्य प्रकार के विधिक अधिकार या दायित्वों के संबंध में अथवा विदेश में की गई संविदा से उद्भूत होने वाले अधिकारों तथा दायित्वों के बारे में विदेशी परिसीमा विधि को लोगू होने से संबंधित होनी चाहिए । जम्मू और कश्मीर के संबंध में ऐसे अधिकारों और दायित्वों के संबंध में भी स्थिति वही होगी ।

(2) 1963 के अधिनियम की वर्तमान उपबंध, अर्थात् धारा 11 अन्य कॉमन लॉ वाले देशें में कानूनों में किए गए परिवर्तनों के अनुरूप नहीं है, और अन्य देशों के नवीनतम रूख की दृष्टि से प्रस्तावित धारा 11 विदेशी परिसीमा विधि को, मूल विधि मानते हुए, लागू की जानी चाहिए । इस स्थिति में, चाहे अधिकार का निर्वापन हो अथवा विदेशी विधि के अधीन अवधि, भारत में तत्स्थानी अवधि की अपेक्षा अधिक हो या कम हो, विदेशी विधि को लागू होगी । यदि विदेशी विधि

यह बताती है कि अवधि के पश्चात् अधिकार निर्वापित हो जाता है तो, भारतीय न्यायालय राहत देने से इंकार कर सकेंगे ।

(3) धारा 11(2)(ख) की इस शर्त को कि सुसंगत अवधि के दौरान पक्षकारों को विदेश में अधिवास किया गया होना चाहिए, हटा देना चाहिए ।

(4) जहां तक भारतीय परिसीमा की धारा 2 से धारा 24 तक के उपबंधों का संबंध है, हमारा विचार है कि उन धाराओं का ऐसे वादों को लागू होना जारी रहना चाहिए जो विदेशी में उद्भूत होने वाली बाध्यताओं के आधार पर फाइल किए गए हैं और केवल एक बात जो विदेशी विधि से लागू होती है वह है उस पर विहित अवधि या ऐसी घोषणा कि अधिकार निर्वापित हो गया है । भारतीय अधिनियम, 1963 की धारा 4 से धारा 24 तक के लागू होने के मामले में भारतीय विधि लागू होगी । यहां हम 1984 के यू.के. अधिनियम और साथ ही साथ आस्ट्रेलियायी अधिनियमितियों से विचलित हो गए हैं । इसका कारण यह है कि अन्यथा भारतीय न्यायालय को, उस रीति के संबंध में जिसमें विवेक का प्रयोग किया जाना है, विदेशी विधि के विभिन्न अन्य उपबंधों पर गहराई से विचार करना होगा । धारा 11 जम्मू और कश्मीर राज्य में और जम्मू और कश्मीर के बाहर ऐसे वादों के बारे में जिनमें वाद भारत में फाइल किए जाते हैं, उद्भूत होने वाले वाद हेतुकों को लागू होगी ।

(5) जहां तक विदेशी डिक्री के निष्पादन का संबंध है, वर्तमान निर्णय विधि कि जम्मू और कश्मीर राज्य में पारित की गई डिक्रियां भारत के अन्य भागों में न्यायालयों में निष्पादन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 43 लागू होती हैं, में विघ्न डालने की आवश्यकता नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के स्पष्टीकरण में निर्देशित विदेश (जिन्हें व्यतिकारी देश कहा गया है) में पारित की गई डिक्रियों के संबंध में ऐसी विदेशी डिक्रियों के निष्पादन के लिए अवधि वह अवधि होगी जो विदेशी विधि में उस देश के न्यायालयों में पारित की गई डिक्रियों, अर्थात् घरेलू डिक्रियों के निष्पादन के लिए बताई गई है । वह अवधि भारत में ऐसे न्यायालयों में विदेशी डिक्रियों के निष्पादन के लिए लागू होगी

जिन पर 1963 के भारतीय अधिनियम का विस्तार है । अवधि के प्रारम्भ की तारीख वह होगी जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क में यथा कथित भारत में जिला न्यायालय में व्यतिकारी विदेश के विदेशी न्यायालय की डिक्री की सत्यापित प्रति फाइल की जाती है । अवधि की संगणना धारा 4 से धारा 24 तक के उपबंधों के अनुसार होगी ।

(6) यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि जम्मू और कश्मीर राज्य या किसी विदेश में परिसीमा अवधि जो भारत में लागू है, उन न्यायालयों में जिन तक 1983 के अधिनियम का विस्तार है, वादों के संस्थित किए जाने के प्रयोजन के लिए होगी न कि उनसे उद्भूत होने वाली आगे की कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिए । इसी प्रकार, भारत में विदेशी डिक्रियों के निष्पादन के लिए विदेशी अवधि लागू करने के लिए प्रस्ताव केवल ऐसे भारतीय न्यायालयों में निष्पादन के लिए कोई आवेदन फाइल करने के प्रयोजनों के लिए है न कि उनसे उद्भूत होने वाली आगे की कार्यवाहियों के लिए ।

(7) इस अर्थ में प्रस्तावित परिवर्तन प्रवर्तन में भावी होंगे, वे केवल प्रस्तावित विधान के प्रारम्भ की तारीख के पश्चात् उद्भूत होने वाले वाद हेतुकों के लिए लागू होंगे । इसका अर्थ यह होगा कि प्रस्तावित परिवर्तन लम्बित कार्यवाहियों या ऐसे वाद हेतुकों जो उद्भूत नहीं हैं, को लागू नहीं होंगे । यह उन वादों से संबंधित है जो भारत में न्यायालयों में संस्थित किए जाएंगे और जिन पर 1963 का अधिनियम लागू होता है और वे वाद जो नई धारा 11 में उपबंधित विदेशी वाद हेतुकों पर आधारित है ।

(8) जहां तक किसी विदेशी न्यायालयों की डिक्रियों के निष्पादन का संबंध है, 1963 के अधिनियम के अधीन भारत के न्यायालयों में इस प्रयोजन से निष्पादन के लिए संस्थित किए गए आवेदन, धारा 11क और अनुच्छेद 136क के प्रस्तावित उपबंध ऐसी विदेशी डिक्रियों के निष्पादन आवेदनों के लिए लागू नहीं होंगे जो प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व पारित की गई थीं ।

हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं ।

अपनी सिफारिशों को विधायी रूप में साकार करने के लिए एक प्रारूप विधेयक, अर्थात् परिसीमा (संशोधन) विधेयक, 2005 परिशिष्ट-I के रूप में इस रिपोर्ट के साथ संलग्न किया गया है ।

हम विधि आयोग के अंशकालिक सदस्य डा. एस. मुरलीधर द्वारा दी गई बहुमूल्य सहायता को अभिलिखित करते हैं ।

ह0

(न्यायमूर्ति एम. जगन्नाथ राव)

अध्यक्ष

ह0

(डा. के.एन. चतुर्वेदी)

सदस्य-सचिव

तारीखः 7 जून, 2005

परिशिष्ट-I

परिसीमा (संशोधन) विधेयक, 2005

परिसीमा अधिनियम, 1963 का संशोधन करने के लिए

एक

विधेयक

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद द्वारा यह निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :-

संक्षिप्त नाम और प्रारम्भः

1. (1) इस अधिनियम को संक्षिप्त नाम परिसीमा (संशोधन) अधिनियम, 2005 है ।

(2) यह उस तारीख से प्रवृत्त होगा जिसे केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निश्चित करे ।

धारा 11 के स्थान पर नई धारा 11 का प्रतिस्थापनः

2. परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) (जिसे इसमें इसके पश्चात् मूल अधिनियम कहा गया है) की धारा 11 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् :-

जिन राज्यक्षेत्रों पर इस अधिनियम का विस्तार है उन राज्यक्षेत्रों के बाहर की गई संविदाओं या उद्भूत होने वाले विधिक अधिकारों और बाध्यताओं के आधार पर वाद

"11. (1) जम्मू और कश्मीर या किसी विदेश में

(i) की गई संविदाओं से उद्भूत होने वाले अधिकार और बाध्यताओं, या

(ii) किसी अन्य प्रकार के अधिकारों और बाध्यताओं के उद्भूत होने के आधार पर

उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, संस्थित किए गए वाद उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट परिसीमा नियमों के अध्यधीन होंगे ।

(2) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जहां मूल विधि जम्मू और कश्मीर राज्य या किसी विदेश में लागू है, कोई वाद किसी ऐसे न्यायालय, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है, द्वारा शासित किया जाना है, उक्त राज्य या देश की परिसीमा विधि में यथा उपबंधित परिसीमा की अवधि और अधिकार के निर्वापन का सिद्धान्त ऐसे वादों के संस्थित के लिए लागू होगी और उक्त राज्य या देश की मूल विधि का भाग मानी जाएगी ।"

नई धारा 11क का अन्तःस्थापनः

3. इस अधिनियम की धारा 2 द्वारा यथा प्रतिस्थापित मूल अधिनियम की धारा 11 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :-

व्यतिकारी विदेश के न्यायालयों द्वारा पारित की गई डिक्रियों का निष्पादनः

"11क. जहां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के स्पष्टीकरण में यथा परिभाषित किसी व्यतिकारी राज्य के किसी वरिष्ठ न्यायालय द्वारा कोई डिक्री पारित की जाती है और किसी न्यायालय में, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है, उसके निष्पादन के लिए कोई आवेदन किया जाता है तो, ऐसे आवेदनों के फाइल करने के लिए धारा 11 में निर्देशित परिसीमा के नियम लागू होंगे परन्तु ऐसी डिक्रियों के निष्पादन के लिए अवधि के प्रारम्भ की तारीख अनुसूची में विनिर्दिष्ट तारीख होगी ।"

अनुसूची में अनुच्छेद 136क का अन्तःस्थापन

4. मूल अधिनियम की अनुसूची में, अनुच्छेद 136 के पश्चात् निम्नलिखित अनुच्छेद अन्तःस्थापित किया जाएगा :

"अनुच्छेद 136क	सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के नीचे स्पष्टीकरण के अनुसार किसी व्यतिकारी राज्य के वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पारित की गई किसी डिक्री का निष्पादन	व्यतिकारी राज्य में उस राज्य में पारित की गई किसी डिक्री के निष्पादन के लिए परिसीमा विधि के अधीन यथा लागू अवधि	वह तारीख जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क के उपबंधों के अनुसार जिला न्यायालय में उक्त डिक्री की सत्यापित प्रति फाइल की जाती है ।"

अस्थायी उपबंध

संशोधनकारी अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन का भावी होना

5. (1) इस अधिनियम की धारा 2 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध प्रवर्तन में भावी होंगे और किसी ऐसे वाद हेतुक को लागू नहीं होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व, जम्मू और कश्मीर राज्य या किसी विदेश में उद्भूत हुआ है ।

(2) इस अधिनियम की धारा 3 और धारा 4 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध प्रवर्तन में भावी होंगे और उक्त धाराओं में यथा कथित ऐसी डिक्रियों के निष्पादन के लिए लागू नहीं होंगे जहां ऐसी डिक्रियां इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व, उक्त राज्यक्षेत्रों में पारित की जाती हैं ।